महाराजा रणजीत सिंह

अ० अ० अनन्त

दो शब्द

संसार के महान् सेनानायकों में महाराजा रणजीतसिंह की ना की जाती है। एक साधारण सरदार परिवार में पैदा होकर वाहु-बल से उन्होंने एक विस्तृत सिक्ख साम्राज्य की थापना की।

महाराजा रणजीतसिंह का उत्थान और पतन सिक्ख जाति का उत्थान और पतन कहा जा सकता है महाराजा की मृत्यु के बाद राज्य की बागडोर को संभालने वाला कोई भी योग्य राजपुरुष उनका स्थान नहीं ले सका। यह एक आश्चर्य की बात है कि जिस सिक्ख सेना के अपूर्व बल और कौशल ने एक के बाद एक युद्ध में सफलता प्रात की, वही खालसा सेना बाद में आपसी वैमनस्य के कारण अपना ही विनाश करने लगी।

महाराजा रणजीतसिंह का जीवन चरित्र युद्ध और साम्राज्य विस्तार का एक आश्चर्यजनक लेखा-जोखा है। प्रस्तुत पुस्तक में महाराजा के जीवन के हर पक्ष का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

अशफाक अहमद 'अनन्त'

आनन्द-कुटीर (स्योंथर म० प्र०)

विषय-सूची

एक बेर के पेड़ के नीचे कुछ लड़के इकट्ठा थे। उनमें से कुछ तो बाँस की बड़ी लग्गी से बेर तोड़ रहे थे और कुछ पत्थर मारकर नीचे गिरा रहे थे। एक लड़का बड़ी उतावली के साथ बेर को बिन-बिन कर इकट्ठा करता जा रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में पत्थर मार कर वह बेर को नीचे गिराता, कुछ खाता और कुछ अपने पास रखता जाता था। अचानक उस लड़के का
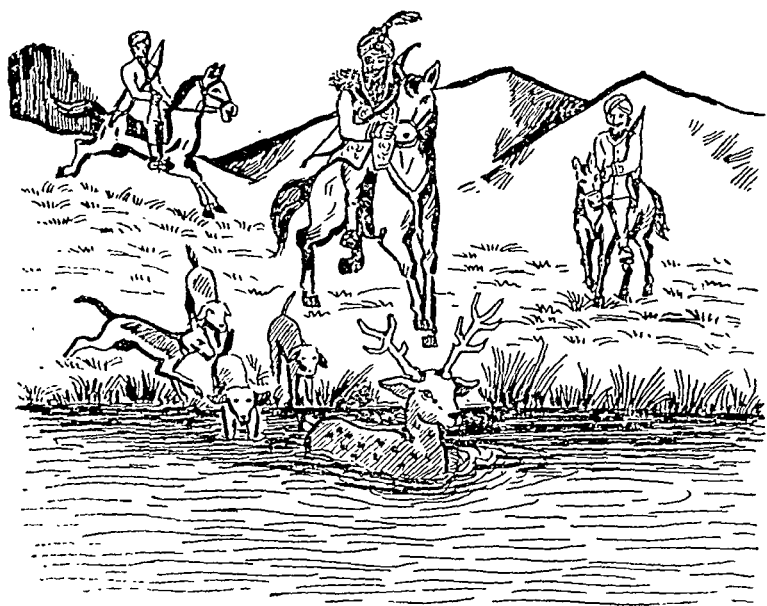
फेंका हुआ पत्थर बेर के पेड़ से दूर जाकर एक घुड़सवार के माथे पर जा लगा। घुड़सवारों की एक टोली उसी रास्ते से जा रही थी। जब घुड़सवारों ने देखा कि उनके सरदार के माथे पर

पत्थर की चोट से खून बह रहा है तो उनकी भौंहें चढ़ गईं। और वे पत्थर मारने वाले को पकड़ने के लिए बेर के पेड़ के नज़दीक आ गए।

इस हलचल से सभी लड़के भाग चुके थे केवल वही लड़का खड़ा रह गया जिसके पत्थर से घुड़सवारों का सरदार घायल हुआ था। शीघ्र ही लड़के को पकड़ कर हिरासत में ले लिया गया।

कुछ देर के बाद लड़का अपने अपराध की सजा पाने के लिए महाराजा रणजीतसिंह के पास पेश हुआ। लड़के के पत्थर से घायल महाराजा रणजीत सिंह के माथे पर चोट का निशान उभरा हुआ था। चारों तरफ़ क्रोध का वातावरण था। सभी को यह आशा थी कि महाराजा के क्रोध के कारण आज इस लड़के की जान पर आ गई है।

लड़के के माँ बाप भी अब तक आ चुके थे। महाराजा ने गम्भीर स्वर से पूछा "पत्थर क्यों मारा ?"

लड़के ने पहले तो उत्तर नहीं दिया। बाद में बड़ी नम्रता और हिम्मत के साथ उत्तर दिया—"मैं भूखा था। बेर को पत्थर मार-मार कर उसके फल नीचे गिराता था। मैं नहीं जानता कि पत्थर आपको कैसे लग गया ?"

लड़के का उत्तर सुनकर सरदारों का क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया। एक साथ कितनी ही तलवारें चमक उठीं। ऐसा लगता था जैसे इस लड़के को मारने के लिए महाराजा की

आज्ञा से पहले सरदारों ने फैसला कर लिया था। कुछ देर तक चारों तरफ़ खामोशी छाई रही इसके बाद महाराजा ने संयत स्वर में कहा—
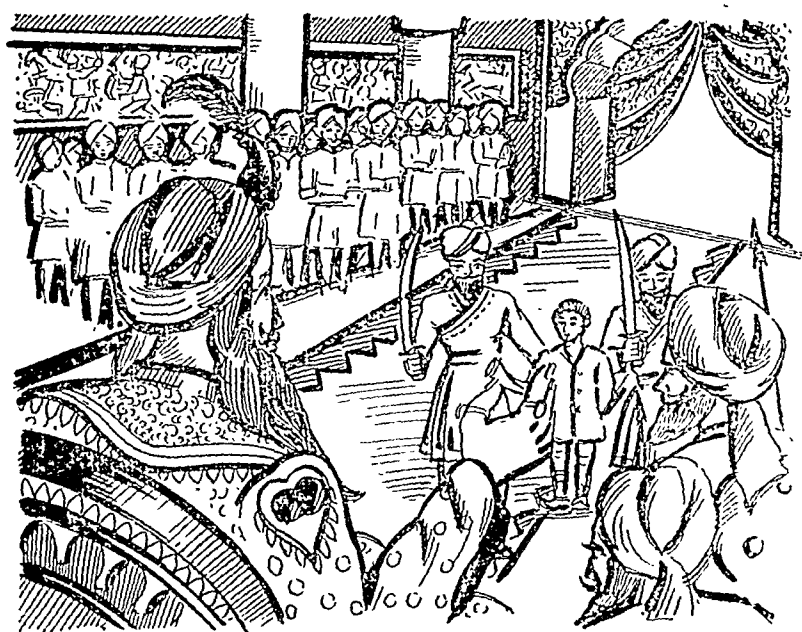
"तुम्हारा पत्थर बहुत अच्छी जगह लगा है। जिस राजा के राज्य में वहाँ के लड़के बेर खाकर अपनी भूख मिटायें उस राजा का सिर फूटना ही चाहिए।" यह सुनकर चारों तरफ शान्ति छा गई। अन्त में महाराजा की आज्ञा हुई कि "इस लड़के को दोनों हाथों से भरकर अशर्फियाँ दी जायें।"

सभासद और दरबारी, सरदारगण आश्चर्य चकित रह गए। महाराजा रणजीत सिंह के माथे को जख्मी करने वाले

को अशर्फियों का पुरस्कार दिया जा रहा है यह सुनकर वे सभी एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। अन्त में महाराजा ने अपने दरबारियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"आप लोग सोचते होंगे कि इस लड़के को दण्ड न देकर मैंने अशर्फियाँ देने की आज्ञा क्यों दी है। बात यह है कि जब यह लड़का निर्जीव पेड़ को पत्थर मारता है तो उसे बेर खाने को मिलता है और जब वही पत्थर महाराजा रणजीत को मारा गया तो लड़के को कुछ न मिले यह महाराजा के लिए शर्म की बात ही नहीं बल्कि ये उसकी महानता का अपमान है। इस लिएइसे अशर्फियाँ देने की आज्ञा दी गई है।"

महाराजा के इस विचित्र न्याय और उदारता को सुनकर जय जय कार के नारे लगने लगे। चारों तरफ़ महाराजा रणजीत सिंह की जय-घोष से आसमान गूँज उठा।

ऐसे थे महाराजा रणजीतसिंह जिनकी दयालुता, और उदारता की एक से एक बढ़कर कहानियाँ फैली हुई हैं।

× × × ×

वंश-परिचय

महाराजा रणजीत सिंह का जन्म सन् १७८० ई० में गुजरानवाला में हुआ था। संसार के अन्य सम्राटों की भाँति, रणजीतसिंह किसी प्राचीन राज-वंश के न थे। उनके पूर्व पुरुष कोही राजा महाराजा न थे। केवल साधारण सिक्ख सरदार थे।

सिक्खों की प्रसिद्धि, उनके बहुबल के कारण थी। सच बात तो यह है कि संसार की सभी बलवता जातियाँ इसी प्रकार गौरव को प्राप्त करती हैं। उस समय प्रत्येक सिक्ख सरदार की यह कामना रहती थी कि, वह अपने बल तथा बुद्धि से अपने साथी एकत्रित करे। सरदारों को इस बात का तनिक भी ध्यान न था कि जो लोग उनके झण्डे के नीचे आकर जमा हो रहे हैं वे किस समाज या जाति के हैं। हाँ, इतना अवश्य देख लिया जाता था, कि वे सरकार का काम कर सकते हैं और लड़ सकते हैं या नहीं।

सिक्ख जाति की उत्पत्ति

सिक्ख धर्म के नेता गुरु नानक साहब ने सन् १४६९ ई० (सम्राट बाबर के राज काल) में तिलौंड़ी ग्राम में, जो रावी के तट पर, लाहौर से कुछ मील हटकर बसा है, जन्म लिया था। उनके पिता तिलौंडी ग्राम के पटवारी थे।

गुरुनानक की बाल्यावस्था से ही सांसारिक विषयों में अरुचि थी, पर पिता के अनुरोध से उन्होंने विवाह कर लिया था और एक सन्तान भी उत्पन्न हुई थी; किन्तु सांसारिक वैभवों पर बाल्यावस्था से ही विरक्ति होने के कारण शीघ्र ही परिवार की मोह माया को तोड़ कर वे यात्रा के लिए निकल पड़े। उनका मर्दाना नामक एक सेवक छाया की भाँति हमेशा उनके साथ यात्रा में रहा करता था। कहा जाता है कि आप मुसलानों के प्रधान तीर्थ स्थान 'मक्का शरीफ़' में भी गये थे। कारण कि आपका विचार हिन्दू और मुसलमानों को एक करने का था।

आपने वैराग्य ग्रहण करने के समय से ही अपने पैत्रिक धर्म पर चोट करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरुनानक साहब पक्के अद्वैत वादी थे। सम्राट बाबर आपकी वाणियों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे और उनके प्रति सम्राटों की भाँति बड़ी प्रतिष्ठा से व्यक्ति आते थे।

गुरुनानक शाह सन् १५३८ ई० में कुल ३६ वर्ष की उम्र में कर्त्तारपुर ग्राम में अपनी स्त्री और बच्चों को छोड़कर वैराग्य को प्राप्त किया। वे एक ईश्वर को मानते थे और उसी के विषय में उपदेश भी करते थे, किन्तु तीर्थ यात्रा, रोजा-व्रत इत्यादि कठिन बन्धनों के पूरे विरोधी थे। उनका उपदेश बड़ा प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी होता था उनकी मृत्यु के बाद उनके चेलों ने उनकी वाणियों को संग्रह करने का बड़ा प्रयत्न किया और जो कुछ मिलीं, उन्हें एकत्रित कर लिया।

गुरुनानक ने अपनी सन्तानों में से किसी को अपनी धार्मिक गद्दी का उत्तराधिकारी नहीं बनाया, बल्कि अपने अंगद नामक एक प्रिय शिष्य को गद्दी पर बैठाया। उन्होंने अपने चेलों को शिष्य, सिख अथवा सिक्ख की उपाधियों से विभूषित किया था, इसी कारण एक सम्प्रदाय ही सिक्ख नाम से पुकारा जाने लगा। पाँचवें गुरु 'अर्जुन' ने बाबा साहब के निर्मित महावाक्यों एवं अन्य गुरुओं की वाणियों का संग्रह किया, जिसको सिक्ख लोग ग्रन्थ साहब के नाम से पुकारते हैं। इस ग्रन्थ का सबसे उत्तम भाग "जपजी साहब" कहलाता है, जिसमें गुरुनानक ने अपने धर्म को अत्यन्त सरल भाषा में वर्णन किया है। "कबीरदास" और "बाबा फरीद" के वचन भी गुरुनानक के अपने ग्रन्थ साहब में सम्मिलित किये हैं। गुरुनानक के बाद उनकी गद्दी पर जितने गुरु बैठे सब उनके ही मत की पुष्टि करते गए। आश्चर्य की बात है कि जो गुरुनानक धार्मिक विषयों में बन्धनों के कट्टर विरोधी थे, उन्हीं के धर्म में धीरेधीरे अनेक बन्धनों का समावेश होने लगा। सिक्ख धर्म में दीक्षित होने के कुछ नियम निश्चित हुए, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

सिक्ख लोग शुद्ध जल में मिश्री डाल कर उसे तलवार से घोलते थे और ऐसा करते समय ग्रन्थ साहब के कतिपय वचनों को पढ़ते जाते थे। जो मनुष्य सिक्ख धर्म स्वीकार करना चाहता था उसको यह जल पिलाया जाता था। और जो शेष

रह जाता था, वह उसके सिर तथा अन्य अंगों पर छिड़क दिया जाता था। धीरे-धीरे यह धर्म मालवा और "मांझ" के जाट जमींदारों तथा अन्य छोटी बड़ी जातियों में फैल गया। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने धर्मावलम्बियों को एक योद्धा जाति में बदल दिया। जब वे तीस वर्ष के हुए, तब मुसलमानों से लोहा लेने के लिए अपने शिष्यों को वीर और लड़ाकू बनाने में जुट गए। इस कार्य में उन्हें बड़ी सफलता मिली। उन्होंने अपने अनुचरों के नाम में 'सिंह' अर्थात् 'केशरी' की उपाधि लगानी प्रारम्भ कर दी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि सिक्ख धर्म में विशेषकर जाट या जट्ट लोग ही आए। जाट लोग अपने निवास स्थान के कारण दो भागों में विभाजित हुए, जिनमें से एक को मालवा और दूसरे को 'मांझ' कहते हैं। मांझ पंजाब देश के उस भाग का नाम है, जो सतलज नदी के उत्तर या यों कहिये कि दोआबे के दक्षिण में है। मालवा उस भू-भाग का नाम है, जो सतलज के दक्षिण की ओर दिल्ली और बीकानेर तक चला गया है।

रणजीतसिंह का 'वंश परिचय'

इस वंश की जागीर का नाम 'सुकरचकिया' था और इसके कुलका सम्बन्ध 'सिन्धान वालिया' कुल से था। ये दोनों कुल

'सांसी' कुल से निकले थे। यद्यपि यह दोनों कुल वाले अपने को राजपूत वतलाते हैं, पर जहाँ तक इनके सम्बन्ध में मालूम हुआ है ये लोग पश्चिम की एक साधारण जाति से उत्पन्न हुए हैं। अमृतसर से पाँच मील की दूरी पर एक गाँव 'राजा सांसी' के नाम से इसी कुल वालों का अब तक वसा हुआ है।

इन दोनों कुलों का संस्थापक वुद्धसिंह नामक एक व्यक्ति था। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह वहुधा लूटमार और डकैती करता था। उसके पास 'देसी' नामक एक घोड़ी थी जो अपनी तेज चाल के लिए वड़ी प्रसिद्ध थी वुद्धसिंह वड़ा वीर और साहसी था। उसके शरीर पर वन्दूक, वर्छी और तलवार के ४० चिन्ह थे। अन्त में वह १७१८ ई० में मर गया और अपने पीछे चन्दासिंह तथा अवधासिंह नामक दो लड़के छोड़ गया। ये दोनों भी अपने पिता की भाँति वीर और साहसी थे। उन्होंने सन् १७३० ई० में 'सुकरचकिया' गाँव को नए सिरे से वसाया और वहुत से वीरों को एकत्र कर धीरे-धीरे आस-पास के अनेक गाँवों पर अपना अधिकार कर लिया।

रणजीत सिंह के प्रपितामह नवधासिंह थे। जो मजीठ नामक स्थान में अफगानों से युद्ध करते समय मारे गये थे। उस समय नवधासिंह के वड़े वेटे 'चरित्रसिंह की अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी। चरित्रसिंह थोड़े ही समय में एक शक्तिशाली सरदार हो गए। उन्होंने आस-पास के सरदारों से मेल जोल कर अपनी ताकत काफी वढ़ा ली थी।

चरित्रसिंह ४५ वर्ष की अवस्था में अपने दो बेटों महासिंह और सोहिजसिंह तथा राजकुँमार नामक एक कन्या को छोड़कर मर गए। महासिंह की अवस्था उस समय १०-११ वर्ष की थी। थोड़े ही समय के बाद महासिंह ने अपनी चतुराही से आस-पास के दुश्मनों का सफाया कर दिया और जींद के स्वामी राजा गजपतिसिंह की कन्या का राजकुमार से व्याह किया। व्याह के ६ वर्ष के बाद रणजीतसिंह का जन्म हुआ। बाल्यावस्था में चेचक के कारण उनकी एक आँख जाती रही।

रणजीतसिंह का बाल्य जीवन

जिस समय रणजीत सिंह की अवस्था १२ वर्ष की थी उनके पिता का देहान्त हो गया। उनकी माँ उनकी संरक्षक नियुक्त हुई और मंत्री लखपतसिंह राज्य का प्रबन्ध कर्त्ता नियत हुआ। रणजीत सिंह ने बाल्यावस्था में कुछ भी शिक्षा नहीं पाई थी। क्योंकि उन दिनों सिक्खों में पढ़ाई-लिखाई का विशेष शौक नहीं था। इसी बीच में रणजीत सिंह की सास जो कि विधवा हो गई थी इनकी देख-रेख के लिए आ गई और अपनी जागीर के साथ-साथ रणजीत सिंह की जागीर का भी प्रबन्ध सम्हालने लगी। कहा जाता है कि रणजीत सिंह की माता की हत्या हो गई थी कुछ लोगों का ऐसा मत है कि

उनका आरचरण ठीक नहीं था। कुछ भी हो रणजीत सिंह अपनी सास 'सदाकुँमार' के चंगुल से निकलना चाहते थे। सदाकुँमार ने जान बूझकर रणजीतसिंह को शिक्षा-दीक्षा से अलग रखा था और उनकी प्रवृत्ति अनेक प्रकार की गन्दी आदतों की ओर लगाती जाती थी। उसका मतलब था कि रणजीत सिंह नीच कर्यों में डूब कर प्रधान सरदार के पद के लायक न रह जायें। किन्तु उनमें ऐसे विचारों का नाम-मात्र भी अंश न था। वे किसी भी व्यसन में नहीं पड़े।

स्वतंत्रता की ओर

इसी बीच में शाहजमा काबुल की राजगद्दी पर आसीन हुआ और वह अपने पितामह अहमदशाह के विजय किए हुए पंजाब देश के प्रदेशों को अपने राज्य के अन्तरगत लाने का विचार करने लगा।

सन् १७९५ ई० से १७९८ ई० के बीच में उसने पंजाब पर लगातार आक्रमण किये। सिक्खों में उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी। पहले आक्रमण में वह केवल झेलम तक पहुँचा और पुनः लौट गया; किन्तु दूसरे आक्रमण में उसे अधिकतर सफलता प्राप्त हुई, और फिर सन् १७९७ ई० में वह बिना रोक-टोक के लाहौर का मालिक बन बैठा। किन्तु

नदी में उस समय बाढ़ आई हुई थी। उसको पार करते समय बादशाह की १२ तोपें उसमें डूब गईं। शाहजमा ने रणजीत सिंह से कहा, कि यदि तुम डूबी हुई तोपें निकलवाकर पेशावर भिजवा दोगे, तो तुम्हें लाहौर का नगर, उसके आस-पास के इलाके और राजा की उपाधि प्रदान की जाएगी। रणजीत सिंह ने आठ तोपें निकलवाकर पेशावर भेज दीं। शाहजमा ने अपना वचन पूरा किया और लाहौर के सूबे की सनद भेज दी। किन्तु वास्तव में यह केवल नियम-पालन था। रणजीत सिंह को आगे चलकर अपनी बहादुरी से ही इस इलाके में प्रभुता जमानी पड़ी।

सफलता के चरण

लाहौर नगर प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध और समृद्धिशाली रहा है इस 'नगर पर सिक्ख-सरदारों का बराबर दाँत' रहता था। जब अहमदशाह अब्दाली लाहौर को अपने नायब के ठिकुई करके चला गया, तब तीन सिक्ख सरदारों ने उस पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। सन् १७६४ ई० में एक दिन अत्यन्त अंधेरी रात के समय दो भंगी सरदार लहनासिंह और गूजरसिंह, एकाएक नगर में घुस पड़े और लाहौर के गवर्नर को मार कर अपना अधिकार जमा लिया (इन्हें भंगी

मुसलमान सरदार और नवाब अधिकारी थे। यद्यपि मुगल और अफगान साम्राज्य का पतन हो रहा था, फिर भी उन लोगों की छाया के तले मुसलमानों को बहुत कुछ स्वतंत्रता प्राप्त थी और सिक्ख सरदारों ने मुसलमानों का नाक में दम कर रखा था। इस समय कसूर, नगर प्रसिद्ध नवाब नजमुद्दीन का मुख्य निवास स्थान था।

कसूरी मुसल्मानों ने कई बार सारा इलाका लूटा और नवाब स्वयम् रणजीत सिंह के विरुद्ध एका करने का दोषी ठहरा! इस कारण रणजीत सिंह उसको शिक्षा देना उचित समझते थे। निदान उस पर चढ़ाई की गई। नवाब को हार मानकर इस नवयुवक राजा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और यह बात निश्चित हो गई कि नवाब मौका आने पर रणजीत सिंह की सहायता करने के लिए जाया करें। इसी वर्ष महाराजा रणजीत सिंह गुरु रामदास के तालाब में स्नान करने गये और वहीं सरदार फतसिंह अहलूवालिया से भेंट हो गई। साथ ही साथ दोनों की मैत्री हुई और दोनों धर्म के भाई बन गए, तथा नियमानुसार दोनों ने पगड़ियाँ अदल-बदल कर लीं।

अभी भंगी सरदारों ने अपनी कुटिलता त्यागी न थी, पर रणजीत सिंह भी अचेत न थे। उन्होंने अमृतसर में, जो भंगियों का मुख्य स्थान था, कहला भेजा कि सन् १७६४ ई० में लाहौर पर अधिकार करने के समय सिक्ख सरदारों ने जम-जमा नामक तोप को मेरे पितामह चरित्रसिंह, का भाग निश्चित

लिया, जिसके साथ ही रामगढ़ियों के लगभग सौ छोटे-छोटे दुर्ग, जो अमृतसर जालन्धर और गुरुदासपुर में थे, सब के सब उनके राज्य में मिल गये। इस वंश के सरदारों को महाराज की ओर से बड़ी-बड़ी जागीरें और फौज में बड़े-बड़े पद मिले।

'नकिया' सरदारों की जागीर सन् १८१० ई० में नष्ट हुई। रणजीत सिंह ने इस वंश की राजकुँअर नाम की एक कन्या से विवाह किया था, जिससे उनका एकलौता पुत्र खड़गसिंह उत्पन्न हुआ था। किन्तु इस सम्बन्ध से रानी राजकुँअर को कुछ लाभ न हुआ। जब कान्त सिंह इस जागीर की गद्दी पर था, रणजीत सिंह ने उसको अपने दरबार में बुलवा भेजा, किन्तु वह जानता था कि यदि मैं लाहौर चला गया, तो वहाँ से फिर घर आना नसीब न होगा। इसलिए उसने कहला भेजा कि महाराज बहादुर मुझे इस प्रतिष्ठा से क्षमा करें। राजा साहब ने इस बात से चिढ़कर उसकी-जागीर के कुल इलाके को अपने राज्य में मिला लिया।

कन्हैया सरदारों की जागीर भी अन्त में पंजाब केशरी के अधिकार में आ गई। इसका अधिकार सदा कुँअर के हाथ में था। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं कि—यह स्त्री चतुर और दृढ़ प्रतिज्ञ थी, किन्तु महाराजा बहादुर के आगे इसकी भी न चली। सदा कुँअर ने रणजीत सिंह के सामने शेरसिंह को उपस्थित करके कहा, कि यह महताब कुँअर (रणजीत सिंह की पत्नी और सदाकुँअर की बेटी के पेठ से पैदा हुआ है।

रणजीत सिंह ने उसकी बुद्धिमत्ता के विचार से अपना पुत्र मान लिया। और शीघ्र ही हजारा के मोर्चे की कमान देकर उसे रवाना किया जहाँ पर उसने कुछ वीरता का भी परिचय दिया था।

जब शेरसिंह हजारा के मोर्चे से वापस लौटा तो रणजीतसिंह ने सदाकुँअर को कहला भेजा कि अब तुम सांसारिक मोह-ममता छोड़कर अपनी जागीर अपने दौहित्र को दे दो। इस समय सदा कुँअर शाहदरा की छावनी में थी। उसने इस अवसर पर इस प्रस्ताव को बिना कुछ कहे सुने स्वीकार कर लिया। किन्तु फिर अपने मुख्य स्थान बाटला में जाकर अंग्रेजों से चिट्ठी-पत्री प्रारम्भ की और लिखा कि "आप लोग मुझे अपनी शरण में सतलज पार रहने की आज्ञा दें। महाराजा रणजीत सिंह ने यह समाचार सुनकर सदाकुँअर को अपने दरबार में बुलाकर धमकाया और कहा कि—इसी में तुम्हारी कुशल है कि तुम अब संसार के वैभव को छोड़ दो। सदाकुँअर एक बन्द पालकी में बैठ कर भागी, पर महाराजा की फौज ने उसे पकड़ लिया। अन्त में महाराजा ने उसे एक किले में नजरबन्द कर दिया और और उसका देश अपने राज्य में मिला लिया।

मुल्तान विजय

महाराजा रणजीत सिंह के हृदय में अब बहुत दिनों की दबी हुई मुल्तान विजय की आकांक्षा अत्यन्त प्रबल हो उठी। इसी से उन्होंने अपनी सेना से अच्छे-अच्छे, साहसी वीरों को चुनकर मुल्तान को चारों ओर से घेर लिया। यह देख वहाँ का सुल्तान नवाब मुजफ्फर बहुत घबराया और उसने इस सहसा पड़ने वाली आपत्ति को बीच में रोकने के लिए अपनी असीम सेना को मुकाबिले के लिए भेज दिया। नवाबी सेना को, अपनी गति में बाधा डालने के लिए आते देखकर महाराजा बहादुर की सेना एकदम आग बबूला हो गई और दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओर के वीरों ने ही अपने प्राणों की ममता छोड़ दी। अपरिमित बलशाली और रणविजयी रणजीतसिंह की सेना के आगे मुजफ्फर खाँ की सेना कब तक टिक सकती थी? मुजफ्फर खाँ के बारम्बर उत्साह दिलाने पर भी नवाबी सेना के पाँव उखड़ गए और वह अस्त्र-शस्त्र को फेंक कर भाग खड़ी हुई। यह देखकर मुजफ्फर खाँ के भी होश उड़ गए और वह प्राण-भय से फौज के पीछे-पीछे भाग निकला। रणजीतसिंह ने उसे पकड़ने के लिए धावा किया। अपने पीछे महाराजा को आते देख और बचने के समस्त मार्गों को अवरुद्ध पा, हारकर नवाब मुजफ्फर ने महाराजा की शरण ले ली। साथ ही बहुत मँगवाकर नजर की। नवाब की इस

महाराजा बहादुर का हृदय दया से भर गया; अतएव वे अपनी फौज के साथ लाहौर लौट आये।

कुछ दिनों के चुप रहने के बाद युद्ध-व्यवसायी महाराजा रणजीत सिंह ने मुल्तान शहर पर अधिकार कर लेना अपना मुख्य ध्येय समझा; इसी से एक बार नवाब को क्षमाकर देने पर भी वे स्थिर होकर न बैठ सके और सन् १८१० ई० में अपने वीर सिपाहियों के साथ मुल्तान पर चढ़ाई कर दी। पर इस बार नवाब नहीं लड़ा, वरन् एक लाख अस्सी हजार रुपया भेंट देकर उसने महाराजा को सन्तुष्ट कर दिया।

इसी बीच में झंग के सुल्तान अहमद खाँ और महाराजा में अनबन हो गई, अहमद खाँ एक असीम साहसी वीर था। उसकी नसनस में बहादुरी भरी हुई थी। इसी से उसने महाराजा बहादुर की शक्ति की कुछ भी परवाह न कर उनसे युद्ध ठान दिया। युद्ध तो ठान दिया और अपने वीरत्व का परिचय भी दिया, पर महाराजा की विजयिनी सेना से लोहा लेना कोई आसान काम नहीं था, इसी से बात की बात में उसके अनेकों सिपाही धराशायी हो गए। यह देखकर वह रणभूमि से भागकर मुल्तान पहुँचा और मुजफ्फर खाँ की शरण ली। मुजफ्फर ने शरणागत बन्धु की रक्षा की। इससे रणजीत सिंह मुजफ्फर से फिर रूष्ट हो गए और उन्होंने खूब धूमधाम के साथ फिर मुल्तान पर धावा बोल दिया। इतिहास में यह लड़ाई चौथे युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस चढ़ाई का

प्रधान सेनापति हरिसिंह नलवा था और महाराजा बहादुर के बड़े-बड़े अमात्यगण भी हरिसिंह के साथ थे। सेनापति ने

मुल्तान जाते हुए रास्ते में अनेक उमरखाँ और जमीदारों से तरह-तरह की भेंटे प्राप्त कीं, बाद में वे सीधे मुल्तान जा पहुँचे। इस बार मुजफ्फरखाँ ने किसी प्रकार की खुशामद न की, निःसंकोच भाव से युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर की सेनाओं ने जी खोलकर युद्ध किया; एक बार तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि नवाब की सेना से पार पाना रणजीत सिंह की सेना के लिए बड़ा कठिन हो गया है। इससे सेनापति हरिसिंह नलवा क्रोधित होकर अतीव उन्माद के

प्रधान सेनापति हरिसिंह नलवा था और महाराजा बहादुर के बड़े-बड़े अमात्यगण भी हरिसिंह के साथ थे। सेनापति ने

मुल्तान जाते हुए रास्ते में अनेक उमरखाँ और जमीदारों से तरह-तरह की भेंटे प्राप्त कीं, बाद में वे सीधे मुल्तान जा पहुँचे। इस बार मुजफ्फरखाँ ने किसी प्रकार की खुशामद न की, निःसंकोच भाव से युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर की सेनाओं ने जी खोलकर युद्ध किया; एक बार तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि नवाब की सेना से पार पाना रणजीत सिंह की सेना के लिए बड़ा कठिन हो गया है। इससे सेनापति हरिसिंह नलवा क्रोधित होकर अतीव उत्साह के

साथ अपनी सुरक्षा सेना की परिचालना करने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि समस्त सेना में एक अभूतपूर्व बल आ गया और बात की बात में नवाबी सेना के पैर उखाड़ दिए गए। शत्रु-सेना भाग चली। हरिसिंह 'वाह गुरु की फतह' का धार्मिक नारा लगाते हुए किले में घुस गए। नगर अधिकार में आ गया। हरिसिंह ने अपनी फौज को नगर लूटने की भी आज्ञा दे दी। नगर में बहुत देर तक लूट-मार होती रही, सिपाही मालामाल हो गए।

महाराजा रणजीत सिंह की विजय हुई। अब केवल शाही महल अधिकार में आना बाकी रह गया था।

उसी समय एक विचित्र घटना घटित हो गई। अर्थात् महाराजा बहादुर के प्रधान दीवान भवानीदास को लोभ के भूत ने धर दबाया तथा मुल्तान हाथ में आकर फिर निकल गया। यह घटना इस प्रकार हुई कि जब नवाब ने देखा कि—निकिला तो हाथ से गया, अब सम्भवतः प्राणों पर भी शीघ्र संकट आवेगा, क्या करूँ?' उस समय उसे सहसा एक उपाय सूझ पड़ा—कि दीवान भवानीदास को लोभ का शिकार बनाना चाहिये। उपाय सफल हुआ। दीवान साहब नवाब की इस प्रकार चिट्ठी पाकर दीवान बहादुर! मैं महाराजा बहादुर का पूरी तौर से हुक्म बरदार हूँ तो भी न मालूम क्यों महाराजा साहब मेरे प्राण और धन के पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं, अब मैंने आपकी शरण ली है, यदि आपकी कृपा

से मुझे प्राण भिक्षा मिल जाय एवं महाराजा बहादुर की सेना किला छोड़कर लाहौर लौट जाय, तो मैं जीवन भर आपका उपकृत रहूँगा। इसके अतिरिक्त दस हजार रुपया नकद आपकी भेंट स्वरूप भेज रहा हूँ। यदि आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेंगे, तो आपको लाभ के सिवा हानि तो होगी ही नहीं, और मैं बाद में भी आपको खुश करने की कोशिश करता रहूँगा।"

दीवान नवाब के चंगुल में आ गए उन्होंने सेनापति हरिसिंह नलवा को किले से सेना हटाने का हुक्म दे दिया।

महाराजा के प्रिय दीवान भवानीदास की इस अद्भुत आज्ञा को सुनकर हरिसिंह एक दम आश्चर्य में आ गये, पर करते ही क्या? दीवान की आज्ञा थी! युद्ध स्थगित कर दिया गया। सेना और सेनापति युद्ध भूमि छोड़ लाहौर की ओर लौट पड़े।

जिस समय सरदार हरिसिंह नलवा सेना सहित लाहौर की सीमा में पदार्पण करने वाले थे, उसी समय महाराजा बाहदुर का भेजा मुल्तान की छावनी के पते का, उन्हें एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, कि 'मुलतान का किला लेने के लिए बधाई, अब नगर पर भी शीघ्र अधिकार कर लो।'

यह कैसा इन्द्रजाल! एक दम दो आज्ञाएँ कैसी? सेनापति दोनों ही अचम्भित हो गये, तथापि इस अश्चर्य-पूर्ण दुर्भेद्य पहेली को समझने के लिये पीछे न लौट सब े

साथ अपनी सुरक्षा सेना की परिचालना करने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि समस्त सेना में एक अभूतपूर्व बल आ गया और बात की बात में नवाबी सेना के पैर उखाड़ दिए गए। शत्रु-सेना भाग चली। हरिसिंह 'वाह गुरु की फतह' का धार्मिक नारा लगाते हुए किले में घुस गए। नगर अधिकार में आ गया। हरिसिंह ने अपनी फौज को नगर लूटने की भी आज्ञा दे दी। नगर में बहुत देर तक लूट-मार होती रही, सिपाही मालामाल हो गए।

महाराजा रणजीत सिंह की विजय हुई। अब केवल शाही महल अधिकार में आना बाकी रह गया था।

उसी समय एक विचित्र घटना घटित हो गई। अर्थात् महाराजा बहादुर के प्रधान दीवान भवानीदास को लोभ के भूत ने धर दबाया तथा मुल्तान हाथ में आकर फिर निकल गया। यह घटना इस प्रकार हुई कि जब नवाब ने देखा कि— 'किला तो हाथ से गया, अब सम्भवतः प्राणों पर भी शीघ्र संकट आवेगा, क्या करूँ?' उस समय उसे सहसा एक उपाय सूझ पड़ा—कि दीवान भवानीदास को लोभ का शिकार बनाना चाहिये। उपाय सफल हुआ। दीवान साहब नवाब की इस प्रकार चिट्ठी पाकर दीवान बहादुर! मैं महाराजा बहादुर का पूरी तौर से हुक्म बरदार हूँ तो भी न मालूम क्यों महाराजा साहब मेरे प्राण और धन के पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं, अब मैंने आपकी शरण ली है, यदि आपकी कृपा

से मुझे प्राण भिक्षा मिल जाय एवं महाराजा बहादुर की सेना किला छोड़कर लाहौर लौट जाय, तो मैं जीवन भर आपका उपकृत रहूँगा। इसके अतिरिक्त दस हजार रुपया नकद आपकी भेंट स्वरूप भेज रहा हूँ। यदि आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेंगे, तो आपको लाभ के सिवा हानि तो होगी ही नहीं, और मैं बाद में भी आपको खुश करने की कोशिश करता रहूँगा।"

दीवान नवाब के चंगुल में आ गए उन्होंने सेनापति हरिसिंह नलवा को किले से सेना हटाने का हुक्म दे दिया।

महाराजा के प्रिय दीवान भवानीदास की इस अद्भुत आज्ञा को सुनकर हरिसिंह एक दम आश्चर्य में आ गये, पर करते ही क्या? दीवान की आज्ञा थी! युद्ध स्थगित कर दिया गया। सेना और सेनापति युद्ध भूमि छोड़ लाहौर की ओर लौट पड़े।

जिस समय सरदार हरिसिंह नलवा सेना सहित लाहौर की सीमा में पदार्पण करने वाले थे, उसी समय महाराजा बाहदुर का भेजा मुल्तान की छावनी के पते का, उन्हें एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, कि 'मुलतान का किला लेने के लिए बधाई, अब नगर पर भी शीघ्र अधिकार कर लो।'

यह कैसा इन्द्रजाल! एक दम दो आज्ञाएँ कैसी? सेनापति दोनों ही अचम्भित हो गये, तथापि इस अश्चर्य-पूर्ण दुर्भेध पहेली को समझने के लिये पीछे न लौट सब के सब

र चले गए तथा महाराजा के सामने जाकर समस्त वृत्तान्त
सुनाया।

भगवानदास दीवान की इस नमकहरामी और विश्वास
तकता पर महाराजा बहादुर अत्यन्त क्रोधित हुए, यहाँ तक कि
पना प्रेमपात्र होने का भी कर्तव्यानुरोधवश उसे जीवन भर
लिए कैद कर दिया एवं राजकुमार खड़गसिंह, सेनापति
हरिसिंह तथा अनेक शूर सामन्तों के साथ अपनी अतुल सेना
को पुनः मुल्तान जीतने के लिये भेज दिया।

इस बार सिक्ख सेना के समस्त वीर नवाब मुजफ्फर खाँ
पर अतिशय क्रुद्ध थे। अतः जाते ही किले पर धावा कर दिया।
मरणकाल उपस्थित देख नवाब ने भी प्राण के मोह को त्याग
घोर युद्ध किया इसी समय सहसा अकाली साधूसिंह नामक
सामन्तों "वाह गुरु की फतह" का धार्मिक नारा लगाता हुआ
किले की दीवार पर चढ़ गया और कूद कर किले का दर्वाजा
भीतर से खोल दिया! हरिसिंह नलवा सेना सहित गढ़ में घुस
गये और वहाँ के सैनिकों को मार कर किले पर पंजाब-केशरी
का झण्डा गाड़ दिया।

महाराजा बहादुर की विजय हुई। सेना ने मनमाने ढंग
से पुनः शहर लूटा। नगर पर अधिकार जमा कर तथा मुजफ्फर
खाँ को पकड़ कर हरिसिंह नलवा लाहौर लौट आए। महाराजा
बहादुर ने सरदार ने हरिसिंह और अकाली साधूसिंह को अनेक
प्रकार के पुरष्कार देकर सम्मानित किया।

काश्मीर-विजय

मुल्तान विजय हुए अभी एक वर्ष भी न बीता था, कि महाराजा रणजीत सिंह की दृष्टि भारत के स्वर्ग काश्मीर राज्य पर पड़ी। काश्मीर को जीत लेने भी लालसा की यद्यपि महाराजा के हृदय में नई नहीं थी, पर उस ओर उनका विशेष ध्यान न था। आजकल उन्हें फुर्सत थी फुर्सत में नवीन भावनाओं का उद्भाव हुआ ही करता है। तदनुसार महाराज के हृदय में उपर्युक्त भावना ने जोर दिया और काश्मीर पर चढ़ाई करने की तैयारी होने लगी। ६ फरवरी १८१६ ई० का दिन था, सहसा काश्मीर के नवाब का वीरवर नामक प्रधान अमात्य उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर लाहौर आया और महाराजा की शूर-सामन्तों से भरी सभा में जाकर दुहाई दी; कि धर्मावतार महाराजा रणजीत सिंह मेरी रक्षा करें।

महाराजा बहादुर ने उसे अभयदान देते हुए समस्त वृत्तान्त पूछा। पूछने पर मालूम हुआ कि—वहां का नवाब जब्बार खाँ प्रजा को मनमाने ढंग से कष्ट देता है, यहाँ तक कि काश्मीर की समस्त प्रजा उसके व्यवहारों से तंग आ गई है और चाहती है कि ऐसे अत्याचारी सुल्तान का शीघ्र ही पतन हो। नवाब जब्बार खाँ के कुछ ऐसे मुँह लगे लोग थे जिनकी बातों में आकर वह काश्मीर के प्रतिष्ठित जागीरदारों और रईसों की इज्जत बात की बात में मिट्टी में मिला देता है।

वीरवर भी उन्हीं लोगों द्वारा की हुई शिकायत से वेइज्जत किया गया; यहाँ तक कि जब्बार खाँ ने उसे देश निकालने की आज्ञा दे दी है।

महाराजा वहादुर ने अपनी मनोगत आकांक्षा को पूर्ण करने के लिये यही समय उपयुक्त समझा और इस न्याय से, कि—ईश्वर की सृष्टि को किसी अन्यायी के अन्याय से बचाना प्रत्येक सामर्थ्यवान् और शक्तिशाली पुरुष का कर्तव्य है, उन्होंने ६ फरवरी को अपनी शत्रु-विजयिनी सेना काश्मीर विजय के लिये भेज दी। इस सेना के प्रधान सेनापति राजकुमार खड़गसिंह और सरदार हरिसिंह नलवा थे। इसके अलावा कुछ सेना मिश्र दीवानचन्द के अधिकार में देकर उन्हें भी सम्भर के मार्ग से काश्मीर भेज दिया। इन सब में प्रधान सेना-नायक राजकुमार खड़गसिंह ही थे।

इस प्रकार कुछ ही दिनों के बाद महाराजा की फौजें काश्मीर-प्रदेश में जा पहुँची। उधर काश्मीर के नवाब जब्बार खाँ को महाराजा रणजीत सिंह की इस चढ़ाई का समाचार पहले ही मिल चुका था। अतएव वह भी युद्ध के लिये शीघ्र लैस हो गया।

रणजीत सिंह की सेना जैसे ही काश्मीर की सीमा में पहुँची वैसे ही नवाब की सेना ने उसे बीच में ही रोकना चाहा। अतः दोनों ओर से युद्ध छिड़ गया। सवेरे से साँझ तक खूब मार-काट होती रही, पठान-सेना ने जी तोड़कर सिक्ख

सेना का सामना किया; किन्तु सायंकाल के ७ बजे रणजीतसिंह की सिक्ख सेना न मालूम किस नवीन बल से उत्तेजित होकर पठान-सेना पर यमदूतों की भाँति टूट पड़ी। बात की बात में मुसलमानी सेना के पाँव उखड़ गये और वह मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। यह देख सिक्ख सेना का उत्साह और भी बढ़ गया एवं उसने पठान सेना का समस्त सरोसामान लूट लिया।

इस प्रकार सिक्ख सेना अपने कष्ट काकीर्ण पथ को साफ़ कर आगे बढ़ी। काश्मीर-प्रदेश पर्वतमय है। उसे शीघ्र ही उत्तीर्णकर नवाबी सल्तनत काश्मीर में पहुँचना बड़ी टेढ़ी खीर थी। अतएव रणजीतसिंह की सेना बीच-बीच में पड़ाव डालती हुई १६ जून १८१६ ई० को पर्वतों से उत्तर कर सब्ज मैदान में पहुँची। तो उसे वहाँ पर कुछ पठान सैनिक देख पड़े।

ये पठान सैनिक काश्मीर की सीमा के युद्ध में हार कर भागे हुए थे। यहाँ पर आकर उन लोगों ने पुनः सेना का संगठन करना आरम्भ किया। अतएव सिक्ख सेना को देखते ही पठान सेना ने एकदम उस पर धावा कर दिया। सिक्खों ने पठानों की सेना को युद्ध के लिये उपस्थित देख शीघ्र ही हथियार बांधकर युद्ध का डंका बजा दिया। मारू बाजों के बजते ही सिक्ख सेना के वीरों की भुजाएँ युद्ध के लिये फड़क उठीं।

उधर पठान सेना के दो भाग किए गए थे, एक भाग को

ु सेना से मुकाबला करने का भार दिया गया था। औ
रे को उसकी मदद के लिए हर समय तैयार रहने की आ
मिली थी।

अब पठान और सिक्ख सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। दोनों ओर से मार-काट शुरू हो गई। इस बार पठान-सेना खूब दिल खोलकर लड़ी। कहते हैं, कि—इस युद्ध में सिक्ख सेना के बहुत से वीर पठानों के हाथ से मारे गये। यह देख खड़गसिंह को बड़ा क्रोध आया और वे वीर हरिसिंह को ललकार कर बोले—"आज यह कैसी अद्भुत बात है, जो मुट्ठी भर पठान असीम सिक्ख सेना पर आरम्भ से ही विजय पाते जा रहे हैं, क्या यहाँ पर सिक्ख जाति के मस्तक पर कलंक का टीका लगेगा। राजकुमार की इस उतेजनात्मक उक्ति को सुनकर हरिसिंह नलवा ने अपने सैनिकों को खूब बढ़-बढ़कर उत्साह दिलाया इससे सिक्ख सेना में नवीन बल का संचार हुआ और उसने जोश में आकर बात की बात में पठान सैनिकों को अपनी बन्दूकों की मार से ज़मीन पर बिछा दिया।

यह देख पठान सेना का दूसरा भाग भी अपने साथियों की सहायता करने के लिए सिक्ख सेना पर टूट पड़ा। फि घमासान युद्ध होने लगा, रक्त की नदियाँ बह निकलीं। सिक्ख वीरों से मोर्चा लेना, एक अनहोनी सी बात थीं; इ बाद में आए हुए पठान सैनिक भी बात की बात में ज़मीन पड़े दिखाई दिये।

महाराजारणजीत सिंह की जीत हुई। उनकी सेना पठान सैनिकों को पुनः परास्त कर काश्मीर की ओर चल पड़ी। ३० जून सन् १८१६ ई० को सिक्खों की सेना काश्मीर के किले के पास जा पहुँची। किले में बहुत थोड़ी सेना थी, अतएव उसे जीतकर नगर ले लेने में कुँवर खड़गसिंह को तनिक भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। और उन्होंने गढ़ पर अपनी जीत का झण्डा गाड़ दिया।

काश्मीर पर रणजीत सिंह का अधिकार होते देख उसके समीपवर्ती कुछ राजागण नाराज हुए और सिक्ख सरदारों से युद्ध करना चाहा, पर मिश्री दीवानचन्द ने उन्हें बीच में ही धर दबाया जिससे उन्हें अधिक उत्पात करने की हिम्मत न बन पड़ी।

काश्मीर की प्रजा तो यह चाहती ही थी कि किसी तरह अत्याचारी जब्बार खाँ का शासन दूर हो एवं कोई न्यायनिष्ठ राजा हमारा शासन करे। इसलिए प्रजा ने भी नतमस्तक हो महाराजा रणजीत सिंह के शासन प्रबन्ध का स्वागत् किया।

इसके बाद कुँवर खड़गसिंह पिता की आज्ञा से दीवानचन्द का राज-प्रतिनिधि बना और काश्मीर का शासन-भार उनके हाथ में सौंपकर सरदार हरिसिंह नलवा के साथ लाहौर लौट आये।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद, काश्मीर प्रदेश के समीप वर्ती द्राइन्दा किले के सुल्तान द्राइन्दा खाँ ने जब सुना कि— अब काश्मीर नवाब जब्बार खाँ के हाथ से निकलकर पंजाब केशरी

महाराजा रणजीत सिंह के अधिकार में चला गया है तो उसे बड़ा दुख हुआ। उसने भागे हुए जब्बार खाँ को अपने पास बुलाकर महाराजा से उसका बदला लेने की तैयारी करने लगा।

धीरे-धीरे यह खबर महाराजा रणजीत सिंह को भी मिली। उन्होंने मिश्र दीवानचन्द की मदद के लिए दीवान मोतीचन्द को भेजा और काश्मीर का शासन दृढ़ कर दिया तथा हरिसिंह नलवा का द्राइन्दा खाँ के दमन के लिये द्राइन्दागढ़ भेज दिया। सरदार हरिसिंह ने एक ही धावे में द्राइन्दा खाँ की सेना को तहस-नहस कर दिया और जब्बार खाँ के साथ-साथ द्राइन्दा खाँ को पकड़कर महाराजा रणजीत सिंह के पास लाहौर भेज दिया। इस घटना से द्राइन्दागढ़ में भी पंजाब केशरी महाराजा का राज्य स्थापित हो गया।

विरोधियों का दमन

काश्मीर विजय के कुछ ही दिनों बाद पंजाब प्रान्त के हजारा, पेशावर और बक्खरगढ़ आदि स्थानों की मुसलमान प्रजा ने राजद्रोह मचाना आरम्भ कर दिया तथा धर्म रक्षा की दुहाई दे, छोटे मोटे स्वार्थ पर नवाबों ने अफगान युसुफजई और गाजी आदि जातियों को महाराजा रणजीत सिंह के विरुद्ध उभारा। जब यह समाचार महाराजा के पास पहुँचा, तब

उन्होंने हरिसिंह, दीवानचन्द, मोतीराम और अपने राजकुमारों को भेजकर उनका दमन कराया। विद्रोहियों के साथ महाराजा रणजीत सिंह का युद्ध एक नहीं, अनेक समयों पर इस भीषण रूप से हुआ कि इतिहासों में उसका वर्णन पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु महाराजा बहादुर पर उस समय विजय-लक्ष्मी पूर्ण रूप से प्रसन्न थी, अतएव वे जिधर दृष्टि डालते थे, उधर ही उनकी जय होती थी।

इस प्रकार महाराजा रणजीत सिंह का प्रताप सूर्य दिन-दिन प्रचण्ड होता गया और उनके तेज से एक बार समस्त भारतवर्ष चौंधिया गया। यहाँ तक कि उस समय की अंग्रेज सरकार भी उनके नाम से भय खाती थी।

अंग्रेजों से सम्पर्क

सतलज के इस पार के इलाकों से, उन इलाकों का अभिप्राय है। जो फिरोजपुर से दिल्ली तक चले गए हैं। रणजीत सिंह के समय में इन इलाकों का बहुत सा भाग सिक्ख सरदारों, जैसे महाराजा पटियाला झींद, इत्यादि के और कुछ अंग्रेजों के अधिकार में था। बहुत सा भाग और किसी राज्य या रियासत में मिला हुआ था। रणजीत सिंह चाहते थे कि—कुल खालसा सरदारों को अपने अधीन कर अपने साम्राज्य को

पहुँचा दें, किन्तु इस विचार में उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। इसका यह कारण था, कि अपने इन विचारों को कार्य रूप में परिणत करने में उन्हें अंग्रेजों की बाधा प्रतीत हुई। अंग्रेज-गवर्नमेण्ट और महाबली पंजाब केशरी के बीच इस विषय में जो सन्धि हुई, उसका वर्णन बड़ा उपयोगी होगा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि महाराजा के किसी दूसरे राजा के राज्य को हस्तगत करने में कोई सन्धि या विचार बाधक न होते थे। जब वे किसी राज्य पर अपनी दृष्टि डालते थे, तो बिना किसी बात का विचार किए उसे चट से हड़प लेते थे। इस दशा में महाराजा रणजीत सिंह का अंग्रेज सरकार से, सन्धि का सदैव निर्वाह करते रहना, अत्यन्त आश्चर्य जनक बात थी। पर इसका एक कारण था। वह यह है कि महाराजा साहब के दिल पर अंग्रेजों की चतुराई और उनकी युद्ध में आधुनिक कला का पूरा परिचय मिल चुका था। प्रायः महाराजा भारत के नक्शे को देखकर कहा करते थे कि एक दिन ऐसा आयेगा जब सम्पूर्ण भारत अंग्रेजों के अधिकार में चला जाएगा। इधर अंग्रेंज सरकार इनके राज्य पर इसलिये हाथ नहीं फैलाती थी कि महाराजा का सहयोग उनके लिए उत्तरी सीमा में ढाल का काम करता था।

उन दिनों 'जार्ज टामसन' नामक एक वीर अंग्रेज उत्तरीय भारत में अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहता था और उसको इस कार्य में कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी, पर

सतलज के इस पार के सिक्ख सरदारों ने उसको ऐसी कड़ी शिकस्त दी कि—सारे मन्सूवे पर पानी फिर गया। वे सरदार महाराष्ट्र लोगों से मिले हुए थे और जब दिल्ली में मरहठों और अंग्रेजों से युद्ध हुआ। तो वे मरहठों के सरदार जरनल बूरकीन की सहायता को आये। अंग्रेजों के जनरल लेका ने ११ वीं सितम्बर १८०३ ई० को उन्हें बुरी तरह से पराजित किया। इसके बाद सन् १८०४ ई० में भी ये सिक्ख सरदार अंग्रेज गवर्नमेएट को बहुत दुख देते रहे और उन्होंने दिल्ली तक के सारे इलाकों को लूट-पीट कर सत्यानाश कर डाला। १८ दिसम्बर सन् १८०४ ई० को 'कर्नलवर्न' ने उनको ऐसा परास्त किया, कि अन्त में सब को जमुना पार भाग जाना पड़ा और उनके दो मुखिया राजा फागसिंह भींदवाला और भाई लालसिंह (कैथल का राजा) अंग्रेजी फौज में मिल गए और अन्त तक अंग्रेजों के सच्चे मित्र बने रहे।

अक्टूबर सन् १८०४ ई० में जसवन्तराव होल्कर दिल्ली के युद्ध में जनरल अकरोली और कर्नरलवर्न से बुरी तरह पराजित हुए और इसके दो माह-बाद फतहगढ़ और डीग में मरहठों ने बड़ी भारी हानि के साथ जनरल लेम और फ्रेजर से बड़ी-बड़ी शिकस्त खाई। जसवन्तराव की कुल फौज तितर-बितर हो गई और जब उनको सेंकिया से सहायता न मिली, तो वे पटियाला में इसी अभिप्राय से आये। पर जब वहाँ भी उन्हें सहा[illegible]न

मिली तो अन्य खालसा-सरदारों ने भी उनकी मदद करने से मुँह मोड़ लिया।

सन् १८०५ ई० में लार्डलेक होल्कर को जीतने के लिये पुनः युद्ध क्षेत्र में उतरे और होल्कर अमृतसर में महाराजा रणजीत सिंह से सहायता लेने के लिये आये, किन्तु फतहसिंह अहलूवालिया और झींद के राजा ने रणजीत सिंह को ऐसा करने से मना किया और कहा कि "यदि होल्कर को साहयता दोगे, तो अंग्रेज-बहादुर से शत्रुता करनी पड़ेगी। लार्डलेक ने व्यास नदी तक होल्कर का पीछा किया और अन्त में उससे सन्धि कर ली। इसी समय रणजीत सिंह और अहलूवालियों से भी अंग्रेजों की सन्धि हो गई इस सन्धि के अनुसार यह तय पाया कि होल्कर को अमृतसर से निकाल दिया तो उनके साथ फिर किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खो और न अर्थ तथा फौज से ही कभी सहायता करो। इस पर अंग्रेजों ने वायदा किया, कि जब तक रणजीतसिंह अंग्रेज बहादुर के शत्रुओं से न मिलेंगे और न उनके विरुद्ध कोई युद्ध करेंगे, तब तक उनके राज्य में अंग्रेजी फौज न जायगी और न उनके अधिकार पर हस्तक्षेप ही करेगी।

इस सन्धि पत्र के अनुसार होल्कर पंजाब से निकाले गये और रणजीत सिंह को सतलज के उत्तर में विजय करते रहने में कोई रुकावट न रही। पर सतलज के इस पार की रियासतों के निमित्त कोई सन्धि न हुई। सन् १८०६ ई० की ग्रीष्म ऋतु में फुलकिया सरदारों के बीच झगड़ा शुरू हो गया, जिससे

[म]हाराजा रणजीतसिंह को उनके इलाकों पर आक्रमण करने का [अ]च्छा मौका मिल गया।

सिक्खों की रियासतों और दिल्ली के बीच के इलाकों की [द]शा, जो अंग्रेजों ने सन् १८०३ ई० में प्राप्त किये थे, अत्यन्त [ही] शोचनीय थी। पर सिक्ख सरदारों के ही उत्पात से, रणजीतसिंह के राज्य में भी कुप्रबन्ध और अवनति ने घर कर लिया था। अन्त को रणजीत सिंह के चाचा भागसिंह झींद वाले ने उनको, अपने और महाराजा पटियाला के बीच झगड़े का निबटारा करने के लिए बुला भेजा।

रणजीत सिंह जुलाई सन् १८०६ ई० में बहुत सी फौज लेकर सतलज पार उतर गए। महाराजा की यह कार्यवाई अंग्रेजों के बड़े मानसिक कष्ट का कारण हुई और उन्होंने अपने दुर्ग करनील को खूब दृढ़ कर लिया। किन्तु रणजीत सिंह ने लुधियाने के जिले को ले लेना ही उचित समझा और अंग्रेजी राज्य की ओर ध्यान न दिया। लुधियाने में मुसलमानों का एक प्राचीनकुल शासन करता था, और जिस समय का वर्णन किया जा रहा है, उस समय दो विधवा औरते राजगद्दी पर आसीन थीं। रणजीत सिंह ने उनके महल और सम्पत्ति के साथ जागीर पर अधिकार कर लिया। इस कार्य में महाराजा साहब ने बड़ी निर्दयता का परिचय दिया।

दूसरे वर्ष रणजीत सिंह अपने सेनाप[ति] ... [मो]हचन्[द] साथ एक बड़ी भारी फौज लेकर पटियाल[े] ...

ी तो अन्य खालसा-सरदारों ने भी उनकी मदद करने
मुँह मोड़ लिया।

सन् १८०५ ई० में लार्डलेक होल्कर को जीतने के लिये
नः युद्ध क्षेत्र में उतरे और होल्कर अमृतसर में महाराजा
णजीत सिंह से सहायता लेने के लिये आये, किन्तु फतहसिंह
अहलूवालिया और झींद के राजा ने रणजीत सिंह को ऐसा
करने से मना किया और कहा कि "यदि होल्कर को साहयता
दोगे, तो अंग्रेज-बहादुर से शत्रुता करनी पड़ेगी। लार्डलेक ने
व्यास नदी तक होल्कर का पीछा किया और अन्त में उससे
सन्धि कर ली। इसी समय रणजीत सिंह और अहलूवालियों
से भी अंग्रेजों की सन्धि हो गई इस सन्धि के अनुसार यह तय
गाया कि होल्कर को अमृतसर से निकाल दिया तो उनके साथ
फिर किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खो और न अर्थ तथा फौज
से ही कभी सहायता करो। इस पर अंग्रेजों ने वायदा किया, कि
जब तक रणजीतसिंह अंग्रेज बहादुर के शत्रुओं से न मिलेंगे और
न उनके विरुद्ध कोई युद्ध करेंगे, तब तक उनके राज्य में अंग्रेजी
फौज न जायगी और न उनके अधिकार पर हस्तक्षेप ही
करेगी।

इस सन्धि पत्र के अनुसार होल्कर पंजाब से निकाले गये
और रणजीत सिंह को सतलज के उत्तर में विजय करते रहने में कोई
रुकावट न रही। पर सतलज के इस पार की रियासतों के
निमित्त कोई सन्धि न हुई। सन् १८०६ ई० की ग्रीष्म ऋतु
में फुलकिया सरदारों के बीच झगड़ा शुरू हो गया, जिससे

इसी समय फ्रान्स के सुप्रसिद्ध वीर 'नेपोलियन वोनापार्ट' ने एशिया में एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित करने का विचार किया था पर सन् १८०८ ई० तक उसके सारे विचारों पर पानी फिर गया। किन्तु इतना होने पर भी अंग्रेजों को उसकी ओर से खतरा बना हुआ था। निदान अंग्रेजों का एक दूत सी० टी० 'मेटकाफ' महाराजा रणजीत सिंह से नई सन्धि करने के लिये लाहौर की ओर चल पड़ा।

इस समय महाराजा बाहादुर की स्थिति बहुत अच्छी न थी। उनको उत्तर की ओर से अफगानों, पंजाब में नए विजय किए हुए सरदारों तथा जो सरदार अधीन न थे, उनकी शत्रुता का प्रत्येक समय खटका लगा रहता था। वे अंग्रेजों के बल तथा कौशल को भली-भाँति जानते थे, किन्तु ऊपर लिखे हुए कारणों से उनकी इस दशा से लाभ न उठा सकते थे। इस पर भी वे इस विचार को कभी नहीं भूलते थे कि अपने साम्राज्य के समस्त खालसा सरदारों और जागीरदारों को मिला लें, क्योंकि सतलज के दक्षिण के पिछले युद्धों से यह स्पष्ट हो गया था, कि कुल किया। न के राजा और मालवा के सरदार आपस की फूट के कारण इतने बलहीन हो गए हैं कि वे उनका सामना नहीं कर सकते।

जब रणजीत सिंह ने अंग्रेजों के दूत के आने का समाचार पाया, तो वे बहुत घबराये। किन्तु उन्होंने निश्चय किया कि सन्धि होने के पूर्व अपनी अवस्था दृढ़ कर लें और इसी अभि-

साहब सिंह पटियालावाले तथा उनकी स्त्री प्रसिद्ध रानी आसकुँअर के बीच झगड़े की निवृत्ति की। रानी साहिबा ने महाराजा रणजीत सिंह को बहुत सा धन बतौर घूस के दिया था, इसलिए महाराजा ने उसके साथ बहुत दबकर कार्य किया। जब रणजीत सिंह वहाँ से लौटे तो उन्होंने फ़िरोजपुर की बहुत सी रियासतें जैसे नारायणगढ़, डाकी मोरण्डा इत्यादि को अपने अधिकार में करके, अपने सरदारों के बीच बाँट दिया।

सतलज के इस पार के सरदारों को अब अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि अपने झगड़ों में रणजीत सिंह को बुलाना कोई बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं। इसका कारण यह था कि रणजीत सिंह स्वयं उनके इलाकों को लेने के लिए प्रस्तुत रहते थे। इसी समय, मार्च सन् १८०८ ई० में राजा-झींद, राजा कैथल का भाईलाल सिंह और राजा साहब सिंह पटियाला वाले दिल्ली में अंग्रेज-रेजिडेण्ट के कमाण्डर 'मि० सिरटेन' की सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थी हुए कि उनको अपनी संरक्षता में ले लें। पर अंग्रेजों को, महाराजा रणजीत सिंह के राज्य बढ़ाने की प्रणाली को रोकने की कोई भी तरकीब नहीं सूझती थी। क्योंकि वे जानते थे महाराजा समस्त सिक्ख राजाओं को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत लाना चाहते हैं। अंग्रेज सरकार रणजीत सिंह के साथ मैत्री के सम्बन्धों को एकाएक तोड़ने से हिचकती थी, क्योंकि ऐसा करने से सम्भव था कि रणजीत सिंह फ्राँस वालों से मैत्री कर लेते।

अतएव अंग्रेजों के राजदूत मेटकाफ साहब ने महाराजा को सूचना दी कि सतलज के दक्षिणीय प्रदेशों पर आपका अधिकार हमारी सरकार स्वीकार न करेगी। महाराष्ट्र शासन का उत्तराधिकारी ब्रिटिश हुकूमत भारत में है और जब मरहठों के साथ हमारा युद्ध हो रहा था, तब आपने अपने और हमारी सरकार के राज्य की सीमा सतलज के इस पार के देशों का कर जमाकर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। इसलिये आपको अपनी सीमा के अन्दर ही रहने की कोशिश करनी चाहिये।

आपका यह कार्य भी उचित नहीं था कि जब हमारी सरकार से आपका पत्र-व्यवहार हो रहा था तो आप सतलज के पार के देशों पर हाथ फैलाते। इसलिये आपको चाहिये कि इस पत्र व्यवहार के आरम्भ से जो इलाके आपने लिये हैं, उनको लौटा दें और सतलज के दक्षिण से अपनी फौज हटालें।

अंग्रेजों की इस शक्ति को मानने में महाराजा ने बहुत दिनों तक आगा-पीछा किया, यहाँ तक कि अंग्रेजों से लड़ने के लिये अपनी फौज एकत्र करने लगे। अंग्रेज सरकार भी बेखबर न थी, उसने भी एक बड़ी फौज अम्बाले की छावनी में भेज दी। पर अन्त में महाराजा ने फकीर अज़ीज़ुद्दीन इत्यादि की राय से इन शर्तों को मान लिया और सन् १८०३ ई० से अंग्रेजी सरकार और महाराजा में परस्पर मैत्री की सन्धि हो गई। इस सन्धि को महाराजा रणजीत सिंह ने ३० वर्ष तक ज्यों का त्यों निबाहा और दोनों सरकारें मित्र भाव से अगल बगल राज्य करती रहीं।

से उन्होंने सतलज के इस पार की रियासतों पर आक्रमण
के लिए 'कसूर' में एक बड़ी फ़ौज तैयार कर ली।
काफ साहब पटियाला के राजा से भेंट करते हुए ११ सितम्बर
१८०८ ई० को 'कसूर' नामक स्थान में पहुँचे। उन्होंने
ग्रेज सरकार की इच्छानुसार महाराजा रणजीत सिंह से प्रार्थना
कि यदि नेपोलियन बोनापार्ट भारत पर आक्रमण करे, तो
अंग्रेज सरकार की सहायता कर उसको पीछे हटावें।
महाराजा रणजीत सिंह ने यह बात स्वीकार करते हुए कहा कि
इस सन्धि के बदले में मैं भी अंग्रेज सरकार से यही इच्छा
रखता हूँ कि वह मुझे सारी सिक्ख जाति का प्रधान स्वीकार
कर ले। मेटकाफ साहब इस बात का निपटारा, बिना अपनी
सरकार की अनुमति के नहीं कर सकते थे, इसलिये वे चुप
रह गये।

बाद में महाराजा ने नदी पारकर, फरादकोर पर अपना
अधिकार जमा लिया और मेलरकोटला के नवाब से बहुत सा
धन माँगा। मेटकाफ साहब रणजीत सिंह के साथ ही थे। पर
जब महाराजा ने अम्बाले पर, जो इन रियासतों के ठीक सामने
था। और अंग्रेजों के अधिकार में लाना चाहता था, आक्रमण
करने का विचार किया, तो वे फतहाबाद की ओर चले गए।

इस बीच में नेपोलियन के भारत पर आक्रमण करने का
खटका मिट गया और अंग्रेजों ने रणजीत सिंह के साथ इस
अवास्तविक भय के आधार पर सन्धि करना व्यर्थ समझा

अतएव अंग्रेजों के राजदूत मेटकाफ साहब ने महाराजा को सूचना दी कि सतलज के दक्षिणीय प्रदेशों पर आपका अधिकार हमारी सरकार स्वीकार न करेगी। महाराष्ट्र शासन का उत्तराधिकारी ब्रिटिश हुकूमत भारत में है और जब मरहठों के साथ हमारा युद्ध हो रहा था, तब आपने अपने और हमारी सरकार के राज्य की सीमा सतलज के इस पार के देशों का कर चमाकर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। इसलिये आपको अपनी सीमा के अन्दर ही रहने की कोशिश करनी चाहिये।

आपका यह कार्य भी उचित नहीं था कि जब हमारी सरकार से आपका पत्र-व्यवहार हो रहा था तो आप सतलज के पार के देशों पर हाथ फैलाते। इसलिये आपको चाहिये कि इस पत्र व्यवहार के आरम्भ से जो इलाके आपने लिये हैं, उनको लौटा दें और सतलज के दक्षिण से अपनी फौज हटालें।

अंग्रेजों की इस शक्ति को मानने में महाराजा ने बहुत दिनों तक आगा-पीछा किया, यहाँ तक कि अंग्रेजों से लड़ने के लिये अपनी फौज एकत्र करने लगे। अंग्रेज सरकार भी बेखबर न थी, उसने भी एक बड़ी फौज अम्बाले की छावनी में भेज दी। पर अन्त में महाराजा ने फकीर अज़ीजुद्दीन इत्यादि की राय से इन शर्तों को मान लिया और सन् १८०३ ई० से अंग्रेजी सरकार और महाराजा में परस्पर मैत्री की सन्धि हो गई। इस सन्धि को महाराजा रणजीत सिंह ने ३० वर्ष तक ज्यों का त्यों निबाहा और दोनों सरकारें मित्र भाव से अगल बगल राज्य करती रहीं।

मित्रता में वृद्धि

सन् १८२७ ई० में गवर्नर लार्ड एमहर्सन साहब शिमले में आकर ठहरे। महाराजा ने लाट साहब की सेवा में इंगलैण्ड के सम्राट के लिए एक अत्यन्त सुन्दर काश्मीरी शाल का खेमा भेजा। इसके उत्तर में लाट साहब ने अपने अफसरों के द्वारा पंजाब केशरी के निकट भेंट की अनेक अच्छी सामग्रियाँ भेजीं। सन् १८२८ ई० में लार्ड एमहर्सन ने भारत से इंगलैण्ड लौट कर, सम्राट के दरबार में रणजीत सिंह की भेंट उपस्थित की। सम्राट ने भी उचित समझा कि हमारी ओर से भी महाराजा को अच्छी अच्छी वस्तुएँ भेंट की जायें। एतएव एक सुन्दर गाड़ी में जुतने वाली घोड़ियाँ, एक साँड और बहुत सी वस्तुएँ गवर्नर जनरल के द्वारा उनकी सेवा में पहुँचाई गईं।

इस बीच में भारत के गवर्नरजनरल लार्ड विलियम वेटिंग नियुक्त हो गए। उनको इस बात का पता चल गया कि महाराजा साहब हम लोगों से अच्छा व्यवहार करते हैं। इसलिए उन्होंने 'कप्तान' वेंडसाहब से जो महाराजा के दरबार में उनकी सम्मति से गए हुए थे, कहला भेजा कि महाराजा से हमारी मुलाकात का जिक्र करो। महाराजा ने भारत के गवर्नर जनरल से भेंट करने का वचन दिया। इस मुलाकात का प्रबन्ध सतलज के दोनों ओर बड़ी धूम-धाम और ठाटबाट से "भयड़" नामक स्थान में किया गया।

महाराजा की फौज सतलज के उत्तर की ओर और अंग्रजी

फौज दक्षिण की ओर थी। बड़े ही आनन्द का समय उपस्थित हुआ। पहले महाराजा रणजीत सिंह गवर्नर जनरल से सतलज के दक्षिण ओर भेंट करने गए, फिर गवर्नरजनरल साहब ने महाराजा साहब के कैम्प में जाकर बदले की मुलाकात की। यह धूमधाम एक सप्ताह तक बराबर जारी रही। महाराजा रणजीत सिंह अंग्रेजी फौज की कवायद और विशेषकर जंगी बैन्ड बाजे से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अंग्रेज गवर्नमेण्ट की ओर से महाराजा को कुछ बहुमूल्य रत्न, बर्मा का सुन्दर हाथी और दो अत्यन्त उत्तम जाति के घोड़े भेंट में दिए गए। इसके अतिरिक्त दो नोपाउण्डर 'तोपें' भी

दी गई। इन साज-सामानों के साथ में एक लटकने वाले पुल का नमूना भी भेंट किया गया। रणजीत सिंह ने प्रसन्नता पूर्वक यह भेंट स्वीकार की और अंग्रेज-सरकार को बहुत से घोड़े, अन्य कीमती सामान भेंट स्वरूप प्रदान किए गए। यह अत्यन्त भड़कीली मुलाकात १ नवम्बर १८३१ को समाप्त हुई और दोनों ओर की फौजें अपने-अपने राज्यों में लौट गईं।

महाराजा रणजीत सिंह का चरित्र

महाराजा रणजीत सिंह की तुलना हम जुलियस सीजर, नेपोलियन बोनापार्ट, सिकन्दर आदि बहादुर व्यक्तियों से कर सकते हैं। केवल आपने भुजबल और बुद्धिबल से ही वे साधारण श्रेणी के सरदार की हैसियत से राजा ही नहीं, बल्कि महाराजा के पद पर पहुँचे थे। राजा अनंगपाल के बाद हिन्दुओं की ध्वजा पताका मिट्टी में मिल गई थी। कोई भी ऐसा हिन्दू स्वाधीन नरेश नहीं हुआ जो हिन्दुओं की खोई हुई मर्यादा को फिर से जमाता। गुरुनानक और गुरु गोविन्द सिंह के नेक साधन से प्रेरित होकर रणजीत सिंह ने पिछली शताब्दी में हिन्दुओं की ध्वजा पताका पंजाब में फहराई थी। उन्होंने अपनी प्रचंड वीरता के बल से ही सिक्ख साम्राज्य का अपूर्व विशाल संगठन किया था।

रणजीतसिंह के चरित्र का एक विशेष महत्व यह है कि सरस्वती देवी की उन पर बिलकुल कृपा नहीं थी। वे अपना नाम तक लिखना पढ़ना नहीं जानते थे, इतने पर भी विजय लक्ष्मी ने उन्हीं का साथ दिया। वे विलक्षण बुद्धि और शक्ति सम्पन्न थे। यदि सन् १८०४ ई० में अंग्रेजों के साथ उनकी सन्धि न होती तो संभव था कि सतलज के इस पार भी वे अनेक प्रदेशों को अपने अधीन कर लेते। आज भी महाराजा रणजीतसिंह के नाम पर पंजाब निवासियों की सूखी हड्डियों में खून दौड़ने लगता है। उनके असीम पराक्रम को देखकर ही उन्हें पंजाब केशरी के नाम से पुकारा जाता है।

यद्यपि रणजीत सिंह विद्या से बिलकुल कोरे थे, उन्हें अक्षर लिखना तक नहीं आता था, फिर भी वे बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे। किसी ने कहा है—"कवि बनाने से नहीं बनते, स्वयं पैदा होते हैं। वस्तुतः यही—सिद्धान्त अनेक नेताओं, राजा महाराजाओं के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होता है। कवि की भाँति कोई राजा भी बनाए से नहीं होता है। यह बात नित्य प्रति देखने में आती है कि जो वंश परम्परागत राजा, महाराजा होते हैं। उनमें से अनेकानेक प्रतिमाहीन राजा दूसरों के इशारे पर नाचते हैं। कठपुतली के समान वे दूसरों के साथ यंत्र स्वरूप बने हुए होते हैं; पर जो प्रतिभाशाली पराक्रमी और तेजस्वी हैं, वे दूसरों के हाथ में यंत्र स्वरूप न बनकर राजकाज में, सैन्य संगठन में युद्ध स्थल में

अपनी विलक्षण बुद्धि और प्रतिभा का परिचय दिया करते हैं। रणजीत सिंह भी ऐसे ही विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थे। उनकी प्रतिभा और तेजस्विता देख कर अनेक योरोपियन पंथियों को चकित होना पड़ा था। उनके समय में जितने भी योरोप निवासी लाहौर आते रहे, सभी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते रहे। इतने विशाल राज्य का प्रबन्ध करना कोई खिलवाड़ नहीं था।

नेपोलियन बोनापार्ट के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसको भूगोल से बड़ा अनुराग था, वह पृथ्वी के मानचित्र को बड़े ध्यान और चाव से देखा करता था। यद्यपि रणजीतसिंह पढ़े लिखे नहीं थे कि वे भूगोल के सम्बन्ध में कुछ जानकारी लेते फिर भी जब कभी कोई विदेशी यात्री उनके दरबार में आता तब वे उससे अनेक प्रकार की बात-चीत करके उसका सारग्रहण कर लेते थे। विदेशी यात्रियों से प्रायः उनकी बात-चीत अन्य देशों की शासन प्रणाली तथा सेना-संगठन आदि विषयों पर हुआ करती थी। कई विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा-वृत्तान्तों में कहा महाराजा रणजीतसिंह के इस प्रकार के प्रश्नोत्तर की बड़ी हँसी उड़ाई है।

रणजीत सिंह इस बात के दृढ़ अनुयायी थे कि अच्छी बात जहाँ से मिले, वहीं से ग्रहण करनी चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने अपनी सेना का यूरोपीय ढंग पर अपूर्ण संगठन किया था। कितने ही विदेशी यात्री रणजीत सिंह की सेना को देख कर दंग रह जाते थे। महाराजा का दरबार

और सिक्ख सेना की प्रायः सभी विदेशी यात्रियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। किसी किसी यात्री ने उनके दरबार का वर्णन करने में अच्छे-अच्छे कवियों को मात कर दिया है। जो लोग इस समय भी नेपोलियन की उपमा महाराजा रणजीतसिंह से करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि नेपोलियन और रणजीत सिंह में एक बड़ा भारी भेद है। नेपोलियन अपनी इच्छाओं को सीमाबद्ध करना नहीं जानता था, उसकी महत्वाकांक्षाएँ अपरिमित थीं। महत्वाकांक्षाएँ होना बुरा नहीं है और वह मनुष्य नहीं, जिसके हृदय में महत्वकांक्षाएँ न हों, परन्तु जिस प्रकार बिना अंकुश लिए मतवाले हाथी को हांकने वाले फीलवान की दशा होती है, वैसी ही अपनी महत्वकांक्षाओं को सीमाबद्ध न रखने वाले व्यक्ति की भी गति होती। नेपोलियन के अधः-पतन का कारण उसकी महत्वकांक्षाएँ ही थीं। महाराजा रणजीतसिंह की जीवनी से ज्ञात होता है कि उनके हृदय में भी महत्वकांक्षाएँ प्रबल रूप से हिलोरें ले रही थीं। किन्तु वे अपनी महत्वकांक्षाओं को सीमाबद्ध करना जानते थे। यही कारण है कि उनके जीवन के समान समाप्ति नहीं हुई।

बहुत से लोगों ने महाराजा रणजीत सिंह को एक लुटेरा कहा है। पर ऐसा कहने वाले यह भूलते हैं कि रणजीत सिंह की भाँति केवल व्यक्ति ही नहीं, बहुत से राष्ट्रों को भी लुटेरा कहा जा सकता है। यह तो सभी को पता है कि बहुत से राष्ट्रों ने दूसरे राष्ट्रों की स्वाधीनता हरण करने के लिए रणजीत सिंह से भी बढ़कर लुटेरापन दिखाया है।

रणजीत सिंह ने अनेक छोटे मोटे राजाओं और सरदारों
उखाड़ा कितने ही राजाओं के मुकुटों को अपने पैरों तले
ा, किन्तु इतने कठोर हृदय होने पर भी वे बड़े दानी थे।
ने दिन बित जाने पर भी आज भी काशी, अमृतसर, लाहौर
ादि स्थानों में रणजीत सिंह के दान पुण्य की लोग चर्चा
किया करते हैं।

सिक्ख समाज का महाराजा रणजीत सिंह के समय में
बहुत अधिक विकास हुआ। यदि उनमें कोई कमी थी तो
केवल यही कि वे अपने राज्य की कुछ ऐसी नीति स्थिर नहीं
कर सके, जिससे भविष्य में उनका स्थापित किया हुआ राज्य
रा-भरा रहता। इतने दिन कठोर परिश्रम करने से जो विशाल
सिक्ख साम्राज्य स्थापित हुआ था, वह थोड़े दिन पीछे ही
किस तरह से धूल में मिल गया यह आगे लिखा जाएगा।

महाराजा का दरबार

महाराजा की सफलता का मुख्य कारण यह था कि
उन्होंने अपने दरबार में सुयोग्य सरदारों तथा बुद्धिमान अफसरों
का एक बड़ा दल एकत्र कर लिया था और प्रत्येक सरदार त
अफसर के विषय में भली प्रकार जाँच कर लिया करते थे
वह उनके राजकीय कामों में कहाँ तक सहायता दे सकता

वे इन सरदारों के गुप्त चाल चलन की तनिक भी चिन्ता न करते थे। इसमें जरा भी सन्देह नही, कि महाराजा अत्यन्त स्वार्थी मनुष्य थे; किन्तु जो व्यक्ति दरबार में उत्तम परामर्श तथा युद्ध क्षेत्र में वीरता का परिचय देता था, वह उनसे बड़े से बड़ा पुरस्कार भी प्राप्त करता था।

जो व्यक्ति राजकीय भेद खोल देता या अन्य प्रकार से राज्य का अशुभचिन्तक होता, वह महाराजा की दृष्टि में तुच्छ हो जाता था महाराजा ने अपने सरदारों और अफसरों को बड़ी-बड़ी जागीरें दे रक्खी थीं। यद्यपि रणजीत सिंह के सरदार और अफसर लोग धर्म के कारण आपस में प्रायः वैर-प्रीति रखते थे, पर, महाराजा साहब इन विषयों से वंचित थे। वे अपनी प्रजा मात्र को, चाहे वह किसी धर्म या सम्प्रदाय की हो, समान भाव से देखते थे। उनके उन सरदारों ने, जिन्होंने निष्पक्ष भाव से, राज्य की सेवा की, उनके हाथ से इतना धन और वैभव प्राप्त किया कि वे मालामाल हो गये।

महाराजा की आकृति

वैरन ह्यूगल ने महाराजा रणजीत सिंह का ऐसा उत्तम चित्र उतारा है, कि उसको देखने से यही जान पड़ता है, कि महाराजा साहब मानों हम लोगों के आगे खड़े हैं। वे मोटे

और साधारण रूप वाले थे। उनकी बाईं आँख बन्द थी। दाहिनी आँख सतेज और चारों ओर घूमा करती थी। रंग भूरा था। मुँह पर चेचक के चिन्ह बने हुए थे। नाक छोटी सीधी और कुछ मोटी थी। दाढ़ी के बाल सफ़ेद और काले थे; सिर बड़ा और गठीला था और वे सरलता पूर्वक हिल न सकते थे। उनकी

गर्दन मोटी और दृढ़ थी। भुजाएं और जांघे पतली थीं। उनके छोटे-छोटे सुन्दर हाथ यदि किसी का हाथ पकड़ लेते थे, तो घण्टों तक उसी तरह खड़े बातें करते थे और प्रायः उसकी उँगलियां दबाया करते थे, जिससे उनके दिल की घबराहट प्रकट होती थी। वे कुर्सी पर पल्थी मार कर बैठते थे। जब वे

घोड़े पर सवार होते थे, तब उनके मुँह पर एक आश्चर्यजनक तेज झलकने लगता था। महाराजा की वृद्धावस्था में उनके एक ओर के अंग में लकवा मार गया था, कि इतने पर भी वे भली भाँति घोड़े को वश में रखते थे। वे दृढ़, फुर्तिले, वीर, सहनशील और दिन-दिन भर घोड़े की पीठ पर बैठने वाले एक पुरुष रत्न थे।

महाराजा का स्वभाव

महाराजा रणजीत सिंह मृगया शिकार के बड़े प्रेमी थे। घोड़ों को इतना प्यार करते थे, मानों उन पर आशिक़ थे। स्वयं अपने निमित्त एक बड़ा घुड़साल रखते थे, जिसमें भारत, अरब और ईरान इत्यादि देशों के मूल्यवान घोड़े भरे रहते थे, आपको तलवार से लड़ने का खूब अभ्यास था। नेजाबाजी और तलवार चलाने में अद्वितीय थे। कपड़ा सादा पहनते थे। जाफरानी रंग का वस्त्र प्रायः धारण करते थे। मुख्य-मुख्य अवसरों को छोड़ कर और कभी भी रत्न, जवाहिरात नहीं पहनते थे। यद्यपि बुढ़ापे में रोगग्रस्त रहते थे, फिर भी सारा दरबार उनके रोब से काँपता था।

फकीर अजीजुद्दीन जब शिमले में लार्ड विलियम बेंटिंग से मिलने आये, तो अंग्रेज अफसर ने उनसे पूछा, कि महाराजा

किस आँख के काने हैं? "इस पर आपने जवाब दिया"
"महाराजा के रोब से, आज तक मैं सिर उठा कर उनके
की ओर देख नहीं सका, जो इस बात का फैसला करूँ,
वे काने हैं अथवा दोनों आँख वाले !"

महाराजा रणजीत सिंह की कीर्ति

सिक्खों का पूर्णोदय पंजाब केशरी महाराजा रणजीत सिंह
के समय में ही हुआ था। रणजीत सिंह ने खंड-खंड राज्यों
को पददलित करके विशाल सिक्ख साम्राज्य स्थापित किय
था। उस समय सिक्खों के खंड-खंड राज्य होने पर भी सिव
सरदार स्वतन्त्र थे। उनमें से कोई कोई अंग्रेजों का पक्ष
करते थे। कुछ सरदार महाराष्ट्र वीरों की छत्रछाया में भी
अपनी किस्मत को देखना चाहते थे। केवल रणजीत सिंह ही
विदेशियों से किसी प्रकार का सम्पर्क न रख कर सिक्ख
साम्राज्य की स्वाधीनता की पताका को अन्त तक फहराते रहे।
गुरु गोविन्दसिंह ने मतमतांतर सम्बन्धी द्वेष को तथा भिन्न-
भिन्न साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करके एक महाबली जाति
का संगठन किया था।

महाराजा रणजीतसिंह ने भी उसी तरह सिक्ख जाति
एक सुव्यवस्थित और दृढ़ राज्य की स्थापना की थी। सतत

नदी के उस पार तक का सारा प्रदेश सिक्ख साम्राज्य के अन्दर था जिसमें हिन्द कुश पर्वत तक महाराजा के राज्य की सीमाएँ पहुँच गई थी। सच बात तो यह है कि उस समय सिक्ख-साम्राज्य अपनी पूरी ओज पर था।

विदेशों में ख्याति

महाराजा की ख्याति इस समय बहुत दूर-दूर तक फैल गई थी सन् १८२१ ई० में रूस के मंत्री प्रिन्स वेलेसरोड के पास से महाराजा के नाम एक पत्र आया जिसमें मंत्री ने यह लिखा था कि रूस के राजा बड़े ही सहृदय व्यक्ति है, वे अन्य देशों की सुख-शान्ति की विशेष इच्छा रखते हैं प्रधानता वे सिक्ख नरेश के अत्यन्त शुभ चिन्तक हैं। मंत्री ने एक सौदागर की रणजीत सिंह से सिफारिश की थी और यह भी अनुरोध किया था कि दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थिर हो। पंजाब के व्यवसायी लोगों को रूस राज्य में सादर सम्मान पूर्वक व्यवसाय का निमंत्रण दिया गया था। परन्तु रूस के मंत्री का भेजा हुआ सौदागर पंजाब तक पहुँचने नहीं पाया। उसकी मार्ग में ही मृत्यु हो गई। इस भाँति उस समय महाराजा की कीर्ति का विस्तार चारों तरफ हो रहा था।

महाराजा के प्रताप की ज्योति केवल रूस राज्य तक ही

उनकी मातृ भाषा अर्थात् फ्रेंच में लिखवाया पहले दोनों ने फारसी भाषा में अपने आने का उद्देश्य लिखा था, पर महाराजा ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उनसे उनकी मातृभाषा में लिखवाया और लिखवाकर लुधियाने के ब्रिटिश एजेण्ट के पास दोनों फ्रेंच युवकों का प्रार्थना पत्र भेज दिया था और उस प्रार्थना पत्र को गुरुमुखी में अनुवाद करके मंगवाया। लुधियाने से उत्तर आने पर रणजीत सिंह के सब संदेह मिट गए, अच्छे वेतन पर उन्होंने फ्रेंचों को अपने यहाँ रखा लाहौर के प्रसिद्ध मुहल्ला अनारकली की मसजिद उन्हें ठहरने के लिए दी गई। महाराजा तीन शर्तों पर अपने यहाँ यूरोपियन को नौकर रखते थे। ये शर्तें थीं कि गोमांस (बीफ) नहीं खाने पावेंगे, (२) दाढ़ी नहीं मुड़ावेंगे और (३) तमाखू नहीं पीने पावेंगे। कहते हैं जनरल विंचूरा और एलर्ड तमाखू पीने की शर्त से मुक्त कर दिए गए थे। महाराजा यूरोपियनों को वेतन भी देते थे। इसके अतिरिक्त रहने का स्थान, जमीन आदि भी देते थे। कई यूरोपियन महाराजा के विश्वासपात्र थे। फ्रेंच सैनिकों ने महाराजा की सेना की व्यवस्था भी बहुत अच्छी तरह की थी।

नौशेरा का युद्ध

सन् १८२३ ई० में नौशेरा का इतिहास में प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस संग्राम की जड़ यही कही जाती है कि प्रथम वर्ष सितम्बर मास में सिक्ख सेना रावलपिंडी गई थी। वहाँ से फकीर अजीजुद्दीन पेशावर के शासक यार मुहम्मद खाँ से कर वसूल करने के लिए गए थे। यार मोहम्मद खाँ ने सिक्ख सेना का मुकाबला करने की सामर्थ्य न देखकर कुछ बहुमूल्य घोड़े महाराजा को भेंट किए थे। इस तरह से उसने महाराज को सन्तुष्ट किया। महाराज ने वहाँ से अजीजुद्दीन को बुला लिया। पेशावर के शासक के भाई मुहम्मद अजीज खाँ की उस समय काबुल में शक्ति बढ़ी चढ़ी हुई थी। उसने पेशावर के शासक अर्थात् अपने भाई का यह कार्य—कि रणजीत सिंह को घोड़े भेंट किये जायें पसन्द नहीं किया। उसने खैबर से जलालाबाद तक समस्त प्रबन्ध का भार अपने हाथ में लेने के लिए कूच किया। वह २० जनवरी को पेशावर पहुँचा। यार मुहम्मद खाँ पहाड़ों में भाग निकला। जब महाराजा को मुहम्मद अजीज खाँ के पेशावर पहुँचने का समाचार मिला तो उन्होंने राजकुमार शेरसिंह की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी। दीवान कृपाराम हरिसिंह नलवा, सरदार अतरसिंह और सरदार ध्यान सिंह आदि भी सेना के साथ गए थे। सिक्खों ने अटक पार करके जमरूद का दुर्ग ले लिया, जिसमें सिक्ख और अफगान दोनों ओर की कुछ हानि हुई। अफगान पहाड़ों में भाग गए। इस पराजय

से अफगान निराश नहीं हुए। उन्होंने अफरीद प्रदेश से 'जहादी' और धर्मोमंत्र अफगानों का एक बड़ी सेना अटक के पश्चिम अठारह कोस के फासले पर इकट्ठी की। उन्होंने 'जिहाद'' अर्थात् धर्मयुद्ध की घोषणा कर दी।" दोनों ओर से घमासान अग्निवर्षा होने लगी। सिक्ख और अफगान एक दूसरे से इस तरह भिड़ गए कि युद्ध स्थल में रक्त की नदी बह निकली युद्ध स्थल में चारों ओर योद्धाओं के शवों का ढेर ही ढेर दिखलाई पड़ता था। इस युद्ध में सिक्ख और अफगान दोनों की प्रबल हानि हुई। अन्त में विजय लक्ष्मी ने सिक्खों को ही वह माला पहनाई।

सन् १८२६ ई० में महाराजा बीमार पड़े। उन्हें हकीम अजीज़ुद्दीन और इनायत शाह की चिकित्सा से कुछ भी लाभ नहीं हुआ, तब उन्होंने अंग्रेजों को योग्य डाक्टर भेजने के लिए लिखा। इस पर अंग्रेजों ने एक योग्य डाक्टर 'मरे' को भेजा, जिसका शालीमार बाग में फकीर अज़ुद्दीन और दीवान मोतीराम ने धूमधाम से स्वागत् किया। उसको प्रथम दिन एक हजार रुपया नकद मिठाई, फल, गुलाबादि शरबत भेंट किए गए। जब तक वह लाहौर रहा उसको नित्य रुपए मिलते रहे। महाराजा रणजीत सिंह डाक्टर की दवा से अच्छे हो गए। वे विदेशियों से विशेषता अंग्रेजों से भेंट करते समय अनेक प्रकार के प्रश्न किया करते थे। महाराजा के इस वार्तालाप से विदेशियों की चाल-ढाल, आदि का परिचय मिलता था।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि कोई भी ऐसा विदेशी यात्री नहीं था जो भारतवर्ष में आकर महाराजा रणजीत सिंह का दरबार देखे बिना लौट गया हो। सन् १८३१ ई० में फ्रांस देश का प्राणि शास्त्र वेत्ता 'जकयूमों' लाहौर पहुँचा। फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन के बेटे शाहदीन ने फ़िल्लौर में उसका सैनिक ठाठ-बाट से स्वागत किया। महाराजा ने उक्त फ्रेंच यात्री से मिल कर बड़ी प्रसन्नता जाहिर की अपनी आदत के अनुसार उससे भी अनेक प्रकार के प्रश्न किए थे। जिसमें स्वर्ग, नरक आदि, आत्मा, परमात्मा तथा ईसाइयों के शैतान के बारे में भी बहुत से प्रश्न किए थे।

'जकयूमों' ने महाराजा रणजीत सिंह को एक शक्तिशाली अद्भुत पुरुष लिखा है। वास्तव में जो जो यूरोपियन महाराजा रणजीत सिंह के यहाँ गए थे, उन सबको महाराजा की अद्भुत शक्ति देखकर चकित रह जाना पड़ा था।

कोहनूर हीरा

कहा जाता है कि महाभारत के समय यह हीरा राजा कर्ण के पास था। कुछ लोग कहते हैं कि कोहनूर हीरा कालूर की खान में, जो मछली बंदर से चार मील उत्तर और पश्चिम की तरफ़ हैदराबाद की अमलदारी में गोदावरी के किनारे पर है,

निकला था। और मीर जुमला ने जो पहले गोलकुंडे के बादशाह का सिपहसालार था और पीछे से आलमीर औरंगजेब का वजीर और सिपहसालार हो गया उसे शाहजहाँ बादशाह को भेंट किया था। शाहजहाँ ने हीरे को अपने तख्त ताऊस में जड़ाया। नादिरशाह उसको ईरान ले गया। नादिरशाह के मरने पर अहमदशाह के हाथ लगा।

जिस समय काबुल में अहमदशाह के वंशज शाह का राज्य था और वह बाद में बंदी बनाकर काश्मीर में रखा गया। तो महाराजा रणजीत सिंह ने कोहनूर हीरा माँगा। शाह ने बहाना किया कि वह कंधार के एक महाजन के यहाँ गिरवी रखा हुआ है। रणजीत सिंह ने शाह के महलों पर कड़ा पहरा बैठा दिया और यहाँ तक प्रबन्ध कर दिया कि बिना तलाशी लिये कोई आने जाने न पावे। किसी-किसी इतिहास लेखक ने लिखा है कि महाराजा ने शाह के महल में खाने पीने के पदार्थ भी आने जाने बन्द करवा दिए और भी अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ देकर, आखिर में हीरा लेकर रणजीत सिंह ने शाह का पीछा छोड़ा।

सालेपिल ग्रिफिन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब शाह भूखो मरने लगा तब लाचार होकर उसने हीरा देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि महाराजा उससे सदैव मित्रता का भाव रखेंगे और उसकी रक्षा करेंगे। महाराजा ने आदि ग्रन्थ की शपथ इस मित्रता के बाहने की खाई। लेकिन हीरा ले लेने पर बात भी नहीं की।

सिक्ख लेखकों ने लिखा है कि "शाह की बेगम ने रणजीत सिंह को लिखा था। कि यदि आप मेरे पति की रक्षा करें और पेशावर के शासन फतेह खाँ को उसे न सौंपें तो मैं कोहनूर हीरा दूँ।" जिससे भी कोहनूर हीरा महाराजा रणजीत सिंह को मिल गया।

अफगानों और सिक्खों का संघर्ष

सन् १८३३ ई० में रणजीत सिंह बीमार हुए, किन्तु थोड़े ही दिन बाद अच्छे हो गए। दूसरे वर्ष रणजीत सिंह की सेना ने कुँवर नौनिहाल सिंह और हरीसिंह नलवा की अध्यक्षता में पेशावर पर सिक्खों की ध्वजा पताका फहरा दी। इस पर काबुल के दोस्त मोहम्मद खां ने सिक्खों से पेशावर लेने के लिए सन् १८३३ ई० में बड़ी धूमधाम से तैयारी की और अफगान सेना जलालाबाद पहुँची। सिक्ख और अफगानों में युद्ध छिड़ गया; रणचंडिका का नृत्य आरम्भ हुआ पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि विजय लक्ष्मी अफगानों को मिलेगी पर अन्त में जीत सिक्खों की ही हुई। सन् १८३६ ई० में महाराजा ने अपने राज्य में दास-प्रथा बंद कर दी। इसी वर्ष रणजीत सिंह का विवाह बड़ी धूम-धाम से अमृतसर में किया; परन्तु इस विवाह का आनन्द कुछ किरकिरा सा हो गया, कारण यह था कि अफगानों से पुनः सिक्खों का युद्ध छिड़ गया।

अफगानों और सिक्खों की शत्रुता बहुत दिनों से चली आ रही थी। हरीसिंह नलवा ने खैबर घाटी पर जमरुद में एक सुदृढ़ दुर्ग बनाना चाहा था। बस अफगानों को युद्ध का बहाना मिल गया। जो वैर विद्वेष भाव बहुत दिनों से चला आ रहा वह भड़क उठा। जातियों का पारस्परिक विद्वेष भाव कभी नहीं मिटता। वह आकाश के नीले रंग की तरह अटल रहता है। सिक्ख और अफगानों के सम्बन्ध में भी यहीं बात थी। वर्षों की ईर्षा अपना विकराल रूप लेकर सामने आ गई। काबुल के दोस्त मोहम्मद खाँ ने अफगानों की बड़ी सेना सिक्खों के मुकाबले में भेजी। जमरुद की खैबर घाटी पर ३० वीं अप्रैल सन् १८३७ ई० को रणचंडी का नाच आरम्भ हुआ जिसमें पहले सिक्खों ने अफगानों पर अपनी विजय समझकर अफगानों को युद्ध स्थल से ही खदेड़ देना चाहा था। अफगान योद्धा जिधर मार्ग मिला, उधर ही भागने की चेष्टा करने लगे। इतने में शमसुद्दीन नामक एक अफगान की अधीनता में बहुत सी घुड़सवार सेना आ गई। इस सहायता को पाकर अफगान सेना का बल बढ़ गया। जो दशा अफगानों की अब तक हो रही थी वही उन्होंने सिक्खों की करनी आरम्भ की। सिक्खों की ऐसी दुर्गति देखकर हरीसिंह नलवा मैदान में डट गया। सिक्ख सेना अपने सेनापति की युद्ध में अत्यन्त, अटल मूर्ति को देखकर प्राणों का मोह छोड़कर लड़ने लगी। अंत में विजय लक्ष्मी सिक्खों को ही मिली। हरीसिंह नलवा इस युद्ध

[illegible] को प्राप्त करके इतिहास में अपनी चिरस्मरणीय
[illegible] गया। सिक्ख और अफगान दोनों ओर के लगभग
[illegible] मारे गये थे।

महाराजा का अन्तिम समय

[illegible] में रणजीत सिंह का अन्तिम समय आ
[illegible] पक्षाघात का प्रबल आक्रमण हुआ कि वे बोल नहीं
[illegible] थे। केवल आंखों के इशारे से राजकाज सम्बन्धी बातें
[illegible] करते थे।

[illegible] दूरदर्शी थे। उन्होंने अपनी मृत्यु
[illegible] सरदारों और कर्मचारियों को बुलाया उनकी एक
सभा [illegible] में उन्होंने हिन्दुओं की शुद्ध सनातन रीति
के अनुसार निश्चय किया कि खड्गसिंह राजसिंहासन पर
बैठे। कुछ लोग कहते हैं कि रणजीत सिंह ने अपने सामने
ही खड्गसिंह को राजतिलक करवा दिया था। राजा ध्यानसिंह
को उन्होंने खड्गसिंह का मंत्री नियुक्त किया।

मृत्यु का समय निकट जान कर रणजीतसिंह ने बहुत सा
दान पुण्य भी किया था। किसी किसी इतिहास लेखक का
कथन है कि जिस दिन महाराजा की मृत्यु हुई थी उसी दिन
कम से कम एक करोड़ रुपया दान पुण्य हुआ था। हजारों

रुपये भूखों और अनाथों को नित्य प्रति बाँटे जाते थे। कुछ कुछ इतिहास लेखकों ने लिखा है कि रणजीत सिंह की मृत्यु
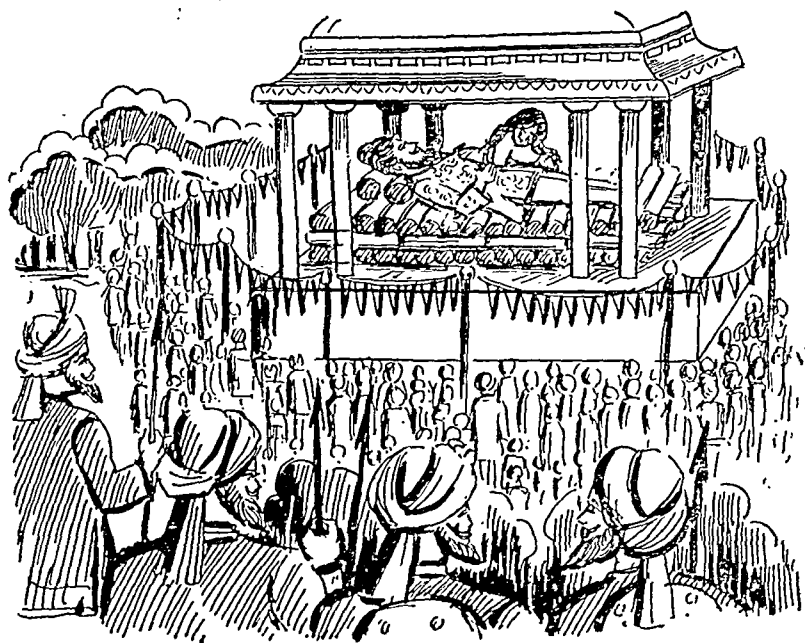
का समय निकट था तब खड़गसिंह रणजीत सिंह के सामने बुलाए गए, पर राजा ध्यानसिंह ने खड़गसिंह और शेरसिंह को रणजीत सिंह तक नहीं पहुँचने दिया। वास्तव में यह घटना सत्य प्रतीत होती है क्योंकि रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद ध्यानसिंह और खड़गसिंह में अनबन रहती थी, जिसका कारण बहुत से लोग यही घटना बताते हैं। अन्य दान पुण्य के अतिरिक्त, पच्चीस-लाख रुपए की सम्मपत्ति तथा बाइस लाख रुपए नकद तो साधु सन्यासियों, फकीरों धर्मशालाओं, में दिए

मसजिदों तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं में बँटवा दिए थे। ढाई मन घी ज्वाला मुखी के मंदिर को भेजा गया था। राजा ध्यान सिंह ने दस लाख रुपए का एक चबूतरा बनाया और उस पर दस हजार रुपए के शाल, बिछवा दिए गए थे।

महाराजा का देहान्त हो जाने पर उनका शव उस चबूतरे पर रख दिया गया। कहते हैं कि मृत्यु के समय महाराजा
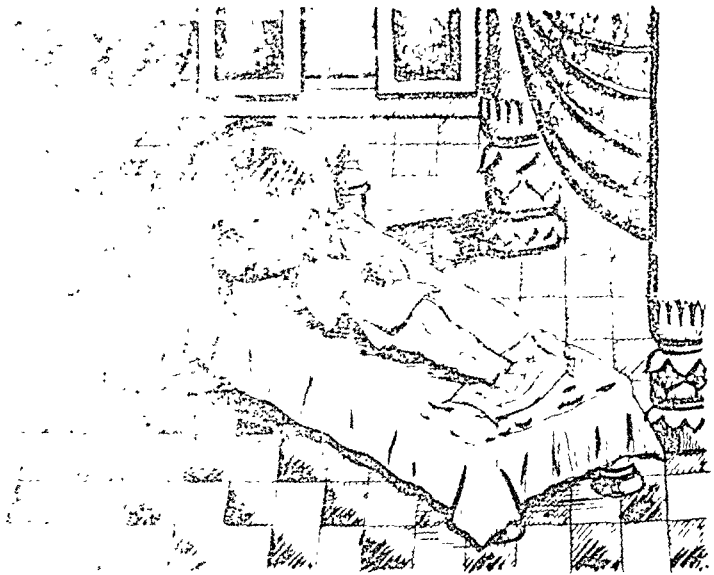
रणजीत सिंह ने प्रसिद्ध हीरा कोहनूर भी दान में जगन्नाथजी मंदिर अथवा अमृतसर के सिक्ख मंदिर को देने का विचार किया था। वे उसको संकल्प करने के लिए तैयार भी थे। राजा ध्यान सिंह और जमादार खुशालसिंह उस हीरे को लेने

के लिए गये थे। परन्तु तोशेखाने के अधिकारी बेलीराम ने कोहनूर हीरा देना स्वीकार नहीं किया। और कहा–"यह राज्य की सम्पति है, इस तरह से फेंकी नहीं जा सकती।" २७ वीं जून सन् १८३९ ई० को महाराजा रणजीत सिंह इस संसार से कूंच कर गए। रणजीत सिंह की मृत्यु से पंजाब का सिर मौर उठ गया। पंजाब की सौभाग्य श्री मलिन पड़ गई।

सिक्ख राज्य का अधः पतन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि रणजीत सिंह ने अपने बड़े लड़के खड़गसिंह को अपने सामने ही राजतिलक करा दिया था। परन्तु खड़गसिंह अपने पिता के समान राजनीतिज्ञ नहीं निकले। वह ऐसा समय था कि राजा के मरने के बाद राजसिंहासन के लिए राजपरिवार में अनेक प्रकार के लड़ाई झगड़े शुरू हो जाते थे।

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने बड़े लड़के को अपने सामने राजतिलक इसलिये कराया था कि उनकी मृत्यु के बाद राजपरिवार में राजसिंहासन के लिए बखेड़ा खड़ा न हो, परन्तु रणजीत सिंह की आशा सफल नहीं हुई। यद्यपि महाराजा ने ३६-३७ वर्ष तक राज्य किया था, परन्तु उनका शासन काल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। बहुत सा समय

ुओं के दमन करने और अपनी राज्य व्यवस्था ठीक करने
लग गया था। यदि महाराजा कुछ दिन और जीवित रहते
। सम्भव है कि वे अपने राज्य का कुछ ऐसा विलक्षण संगठन
कर जाते कि उनकी मृत्यु होने के बाद शीघ्र ही सिक्ख
साम्राज्य में इतने उत्पात न मचते।

किसी-किसी इतिहास लेखक ने रणजीत सिंह के बड़े पुत्र
खड़गसिंह को राज्य के सर्वथा अयोग्य ठहराया है। परन्तु
हम यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, कि खड़गसिंह सर्वथा
ही राज्य के अयोग्य थे। इसमें अपने पिता के अलौकिक गुण
बहुत ही कम थे। वे अपने पिता के समान धीर, गम्भीर और
राजनीतिज्ञ नहीं थे। मुगल सम्राट बाबर के जीते हुए राज्य से
शीघ्र ही उनके जेठे पुत्र हुमायूँ के वँचित होने का कारण,
कहीं इतिहास लेखकों ने लिखा है कि—"हुमायूँ एक ऐसा
शासक था कि यदि नवप्रतिष्ठित राज्य का संगठन अच्छी
तरह से होता तो वह शान्ति पूर्वक राज्य करता।" इस प्रकार
महाराजा खड़गसिंह के सम्बन्ध में यह कहा जाय कि—यदि
रणजीतसिंह का राज्य सुसंगठित होता तो खड़गसिंह भी शान्ति
पूर्वक राज्य करते।

हुमायूँ में अपने मार्ग में से विघ्न बाधाओं को दूर क
करने की क्षमता थी, खड़गसिंह इस क्षमता से रहित थे।
कारण था कि खड़गसिंह थोड़े दिन अपने दैनिक राज्
सुख भोग सके थे। थोड़े दिनों में ही राजा ध्यानसिंह

ना किसी रोक-टोक के महाराजा के जनाने महलों में भी
ते जाया करते थे। जिन दिनों रणजीत सिंह रोग शय्या पर
ड़े हुए मृत्यु की बाट देख रहे थे, उन दिनों राजा ध्यानसिंह
ड़क पीड़ित महाराजा के पास चले जाया करते थे और
नका पुत्र हीरासिंह तो हमेशा महलों में ही रहता था, जिससे
हाराजा रणजीत सिंह के सभी भेदों की उनको खबर मिलती
हती थी और युवराज खड़गसिंह तथा राजकुमार शेरसिंह
टों ड्योढ़ी पर खड़े रहते थे और महाराजा के पास नहीं
हुँचने पाते थे।

महाराजा खड़गसिंह जैसे ही गद्दी पर बैठे, ध्यानसिंह का
हलों में जाना बन्द करा दिया। यह बात ध्यान सिंह को बुरी
गी। बस यहीं से साम्राज्य के अन्दर फूट का बीजारोपण
शुरू हुआ। इसी समय चेतसिंह नामक एक व्यक्ति ने खड़ग
सिंह के दुर्बल हृदय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था।
महाराजा खड़गसिंह चेतसिंह के हाथों की कठपुतली बन गए।
चेतसिंह की सम्मति से वे बहुत से कार्य करने लगे, ध्यानसिंह
भी इन बातों से असावधान नहीं थे, वे खड़गसिंह की उखाड़
पुखाड़ करने लगे।

खड़गसिंह ने चेतसिंह को वजीर के पद तक पहुँचा दिया।
कहते हैं। ध्यानसिंह की हत्या का भी प्रयत्न किया गया;
किन्तु ध्यानसिंह बहुत चालाक थे उस समय सिक्ख साम्राज्य
में उनकी असाधारण शक्ति थी। राई से पर्वत करने की उनमें

तद्गण शक्ति थी। उन्होंने सिक्खों में खड़गसिंह के सम्बन्ध
यह अफवाह फैलाही कि "खड़गसिंह ने अंग्रेजों की अधीनता
ोकार कर ली है। और उन को एक रुपए पर छः आना कर
ना भी मंजूर कर लिया है। खड़गसिंह अंग्रेजों की सहायता
से सिक्ख सेना और सिक्ख सरदारों को हटाना चाहता है।
सिक्खों के स्थान में अंग्रेज अफसर रक्खे जायेंगे।"

ध्यानसिंह का यह मोहिनी मंत्र सिक्खों में काम कर गया
और यहाँ तक काम किया कि महाराजा खड़गसिंह की महारा
चन्दकौर और राजकुमार नौनिहालसिंह तक इस मोहनी मंत्र
से मोहित हो गए थे।

उन दिनों कुँवर नौनिहालसिंह पेशावर में थे, वे वहाँ से
ध्यानसिंह के भाई राजा गुलाबसिंह के साथ लाहौर आए। मार्ग
में गुलाबसिंह ने उसे महाराजा खड़गसिंह के विरुद्ध और भी
उभाड़ दिया। इस प्रकार ध्यानसिंह ने खड़गसिंह के प्रति
उनकी पत्नी और बेटे नौनिहालसिंह तक को विरुद्ध कर
दिया। इतना करके ही ध्यानसिंह खामोश नहीं बैठे, उन्होंने
खड़गसिंह राज्यच्युत करने की चेष्टा की।

एक दिन ध्यानसिंह अपने दोनों भाई गुलाबसिंह, सुचे
सिंह और अन्य सरदारों के साथ किले में सूर्योदय से दो घं
पहले गए, और खड़गसिंह के सोने के कमरे में पहुँच गए
मार्ग में खड़गसिंह के कुछ सेवकों ने राजा ध्यानसिंह का साम
किया, जो वहीं मार दिए गए। सारा दल महाराजा खड़ग

के सोने के कमरे में घुस गया। वहाँ पर पहरे वालों ने ध्यान सिंह के दल का सामना करना चाहा, पर ध्यान सिंह को देखते ही वे पीछे हट गए। युवराज नौनिहालसिंह और उनकी माँ चन्दकौर भी ध्यानसिंह के साथ ही साथ खड़गसिंह के कमरे में इसलिए गए कि वे खड़गसिंह को कुछ शारीरिक हानि न पहुँचा सके। अचानक खड़गसिंह अपने को ध्यानसिंह के फंदे में फंसा देखकर विस्मित हुए। परन्तु अपना कुछ वश चलता हुआ न देखकर वे कुछ न कर सके। चेतसिंह स्नानगृह में घुस गया, ध्यानसिंह ने उसको वहाँ से पकड़कर बाहर निकाल लिया और उसके पेट में दो वार चाकू घुसेड़ उसे मार डाला। ध्यानसिंह ने चेतसिंह के साथियों की भी वहीं हत्या कर डाली।

यद्यपि इस घटना के वाद मरने तक खड़गसिंह नाम मात्र का राजा रहा था, तथापि उसने केवल तीन महीने ही राज्य किया था। इस घटना के बाद खड़गसिंह दुर्ग में न रह कर नगर वाले अपने भवन में रहने लगा और अंत समय तक वहीं रहा। खड़गसिंह के बाद राजकुमार नौनिहालसिंह ने विशाल सिक्ख साम्राज्य का शासन किया। कुँवर नौनिहालसिंह वड़ा होनहार प्रतिभाशाली और विलक्षण वुद्धि सम्पन्न था। प्रायः सभी ने उसकी अनोखी वुद्धि की प्रशंसा की है। कहा जाता है कि नौनिहालसिंह दूसरे रणजीत सिंह थे।

जम्मू के राजा ध्यानसिंह तथा गुलावसिंह पहले से ही

वहुत चढ़े बढ़े थे। महाराजा खड़गसिंह को नजरबन्द करने और चेतसिंह की हत्या करा देने के बाद उनके घमण्ड की कोई सीमा नहीं रह गई थी। राज्य की बागडोर हाथ में लेकर कुँवर नौनिहालसिंह को भी जम्मू नरेशों की बढ़ती हुई शक्ति को दमन करने के लिए चिन्तित होना पड़ा था। राज्य में उस समय और भी कई प्रकार के विरोधी दल खड़े हो गए थे।

ब्रिटिश एजेन्ट क्लर्क को नौनिहालसिंह की जम्मू नरेशों को दमन करने तथा विरोधी दलों को शान्त करने की चेष्टा में भी अनोखा सन्देह सूझ पड़ा। उन्हें नौनिहालसिंह की इस चेष्टा में अंग्रेजों के प्रति शत्रुता का भूत नजर आने लगा। क्लर्क साहब यह प्रमाणित करना चाहते थे कि कुँवर नौनिहाल सिंह अफगान प्रजा को अंग्रेजों के प्रति उभाड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर नौनिहालसिंह ने क्लर्क के इस कथन को मिथ्या सिद्ध करके अपने को इस कलंक से मुक्त कर दिया। इन सब झंझटों में फँसे रहने के कारण कुँवर नौनिहालसिंह जम्मू नरेशों की बढ़ती हुई क्षमता को घटाने में समर्थ नहीं हो सके थे कि अचानक उनके प्राण लेने वाली एक अनर्थकारी घटना उपस्थित हो गई। सिक्ख जिस कुँवर नौनिहालसिंह में दूसरे रणजीत सिंह को देखना चाहते थे; वहीं कुँवर नौनिहाल सिंह चल बसा। सिक्खों की आशा पर पानी फिर गया।

५ नवम्बर सन् १८४० ई० को महाराजा खड़गसिंह का

देहान्त हो गया। जब खड़गसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया हो रही थी तब नौनिहालसिंह वहाँ से चल पड़े। रास्ते में एक दरवाजा गिरने से कुँवर नौनिहालसिंह पंजाब वासियों का सलाकार इस संसार से कूंच कर गया। दरवाजे के गिरने का कारण आज-तक किसी पर प्रकट नहीं हुआ। प्रायः सभी इतिहास लेखकों ने इस दरवाजे के गिरने का कलंक जम्मू के राजाओं पर ही गढ़ा है और यह सम्भव भी है कि जम्मू के राजाओं ने कुँवर नौनिहालसिंह की इस भाँति हत्या करके अपनी उन्नति के मार्ग से कंटक को दूर करने की चेष्टा की हो। जो कुछ भी हो इस आकस्मिक घटना से रणजीत सिंह के स्थापित किए हुए विशाल साम्राज्य का भविष्य अंधकारमय हो गया।

पारस्परिक युद्ध

जम्मू नरेश राजा ध्यानसिंह सिक्ख साम्राज्य के सर्वोच्च कर्त्ता-धर्ता विधाता आप ही बनना चाहते थे इसलिए उसने सिक्खों में भेद नीति का प्रचार करके ही, सिक्ख साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाही थी। कुँवर नौनिहालसिंह की मृत्यु के बाद राजा ध्यानसिंह सोचने लगे कि ऐसे व्यक्ति को राजसिंहासन पर बैठाना चाहिए जो हमेशा उनके हाथ का खिलौना बना रहे। चारों ओर निगाह दौ[illegible]

...रसिंह के अतिरिक्त कोई ऐसा व्यक्ति नजर नहीं आया
विशाल सिक्ख साम्राज्य का अधिपति हो कर भी ध्यानसिंह
हाथ की कठपुतली बनता। दूरदर्शी ध्यानसिंह ने सोचा कि
यर नौनिहालसिंह की माता चंदकौर को राजसिंहासन पर
ठाने पर जम्मू नरेशों की दाल नहीं गल सकेगी, क्योंकि
हारानी चंदकौर के समय में सिंधावालों के सामने जम्मू नरेशों
के अधिकार न बढ़ने पावेंगे।

बस इसी खोटी बुद्धि के वशीभूत होकर अपने स्वार्थ की
पूर्ति के लिए राजा ध्यानसिंह ने शेरसिंह को ही गद्दी पर बैठाना
चाहा।

इधर महारानी चंदकौर भी अपने पति और पुत्र के राज-
सिंहासन को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुई। उस वीर माता
और वीर पत्नि ने प्रण किया कि "जब तक शरीर में प्राण है
तब तक इस षड़यंत्र को पूरा होने नहीं दूँगी।"

महारानी की इस अटल प्रतिज्ञा को देख कर राजा ध्यान
सिंह जम्मू चले गए और वहीं से वे सिक्ख सेना को शेरसिंह
के पक्ष में करने लगे। कुछ सरदार रानी के पक्ष में भी थे। ध्यान
सिंह का बड़ा भाई गुलाबसिंह रानी का सहायक था। दोनों
ओर युद्ध की तैयारी हो रही थी। ध्यानसिंह ने शेरसिंह को
उसकी जागीर पर भेज दिया और स्वयं जम्मू पहुँचकर वे
अपनी सफलता के निमित्त प्रयत्न करने लगे; किन्तु शेरसिं...
...के एक प्रबन्धकर्त्ता ज्वालासिंह नामधारी एक व्यक्ति के हद...

में भी सिक्ख साम्राज्य के मंत्री होने की महत्वाकांक्षा हिलोरें ले रही थीं। उसने ध्यानसिंह से पूर्व ही सिक्ख सेना को अपने स्वामी शेरसिंह के पक्ष में कर लिया और उसने चाहा कि बिना राजा ध्यानसिंह की सहायता के ही शेरसिंह को राजसिंहासन पर बैठावे।

इसी अवधि में ध्यानसिंह ने भी शेरसिंह को लाहौर जाने के लिए लिख दिया। पंजाब केशरी रणजीत सिंह की वीर वाहिनी सिक्ख सेना ने शेरसिंह को सिक्ख साम्राज्य का अधीश्वर स्वीकार किया। राज नियम के अनुसार सेना के योद्धाओं ने शेरसिंह को भेंट दीं, तोपों की सलामी दी और राजा होने के उपलक्ष्य में बधाइयाँ दी जाने लगी।

शेरसिंह ने सिक्ख सेना सहित पौ फटने से पहले ही राजधानी में प्रवेश किया। उधर गुलाबसिंह तथा अन्य सरदार भी असावधान नहीं थे, उन्होंने दुर्ग की सेना से दुर्ग तथा रानी की रक्षा के लिए, प्राणों की बाजी लगाने की कठोर प्रतिज्ञा कराई। दुर्ग के भीतर प्रत्येक योद्धा ने दुर्ग तथा रानी की रक्षा के लिए शपथ ग्रहण की।

प्रातःकाल का समय था। अनेक लाहौर निवासी शय्या पर पड़े आँखें मल रहे थे। पूरी तरह से उनकी नींद नहीं खुलने पाई थी। सूर्योदय नहीं हुआ था कि समस्त नगर 'वाह गुरुजी की फतह' की आवाज से गूँज उठा। लगभग साठ सत्तर हजार सिक्ख सेना ने दुर्ग पर आक्रमण किया।

समुद्र की लहरें पर्वत से टकराती हैं, वैसे ही सिक्ख सेना लाहौर दुर्ग से टक्कर खाने लगी, दोनों ओर से तोपें दगनी शुरू हुईं। दोनों ओर से अग्नि वर्षा होने लगी। दुर्ग द्वार इस अग्नि वर्षा से ठहर न सका, वह जल्दी ही स्वाहा हो गया। चन्द मिनिटों में ही लाशों के ढेर दिखाई पड़ने लगे।

विना विश्राम के दोनों ओर से लगातार अग्नि वर्षा होती रही। इस बीच में सिक्खों ने सुरंग लगाकर दुर्ग को उड़ाना चाहा, पर वे कामयाब नहीं हुए। शेरसिंह ने गुलाबसिंह के पास संधि का प्रस्ताव भेजा।

रानी चंदकौर की ओर से गुलाबसिंह ने चार शर्तों पर दुर्ग खाली करने का प्रस्ताव किया। पहली शर्त यह थी कि रानी चंदकौर को नौ लाख रुपए की जागीर ज़म्मू के पहाड़ी प्रदेशों के निकट मिले। दूसरी शेरसिंह "चद्दर डालने" की रीति से विवाह न करे, तीसरी यह कि दुर्ग की सेना दुर्ग और राजधानी से निशान उड़ाती हुई बाहर चली जायं, उस पर कोई आक्रमण न करे। चौथी यह कि इन तीनों शर्तों की रक्षा के लिए कुछ जमानत चाहिये।

लगातार छः दिन के युद्ध के बाद ये शर्तें स्वीकार हुईं। सिक्ख सेना की बहुत अधिक हानि हुई।

गुलाबसिंह और रानी चंदकौर ने दुर्ग के सिपाहियों को युद्ध स्वरूप यथेष्ट पुरस्कार दिया। दुर्ग खाली करते समय राजा गुलाब सिंह ने बहुत सा धन, अनेक अमूल्य रत्न, हीरा,

संशय उत्पन्न हो गया। वे दोनों ही एक दूसरे के पंजे से निकलकर अपने-अपने स्वास्थ्य साधन की चिन्ता करने लगे।

इसी बीच में शेरसिंह ने और भी मूर्खता का काम किया कि लहनासिंह सिंधावाले को कैद कर दिया।

अतरसिंह और उसका भतीजा अजीतसिंह भागकर सतलज पार अंग्रेजी राज्य में चले आए। भाई रामसिंह की चेष्टा से लहनासिंह का कैद से छुटकारा हुआ। उसके अनुरोध से अतरसिंह और अजीतसिंह फिर पंजाब में बुला लिए गए। किसी-किसी इतिहास लेखक ने लिखा है कि अंग्रेजों के अनुरोध से महाराजा शेरसिंह ने सिंधावालों को अपने राज्य में बुला लिया था।

भला ध्यानसिंह इस अवसर को क्यों चूकने लगे। उन्होंने सिंधावालों को शेरसिंह के विरुद्ध पट्टी पढ़ाना आरम्भ किया, और उनको शेरसिंह के बध करने के लिए उभारा। कहते हैं ध्यानसिंह ने सिंधावालों को शेरसिंह की हत्या करने के लिए बहुत कुछ पारितोषिक देने का वचन दिया था।

एक लहनासिंह और अजीतसिंह दोनों ने महाराज शेरसिंह के पास जाकर राजा ध्यानसिंह के षड़यंत्र की बात सुनाई। शेरसिंह, ध्यानसिंह के षड़यंत्र की बात सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। कहते हैं, उन्होंने अपनी तलवार दोनों सिंधावालों के सामने रखकर कहा कि "यदि आप लोग मुझे मारने के लिए आए हैं, तो इस तलवार से मुझे कत्ल कर

डालिए, पर याद रखिएगा कि एक दिन ध्यानसिंह आप लोगों को भी इसी तरह कत्ल कर डालेगा।" शेरसिंह का यह वाक्य सुनकर सिंधावालों ने उसे ढाढ़स बंधाया और मंत्री ध्यानसिंह के लिए उससे एक आज्ञा पत्र लिखा लिया। सिंधावाले महाराजा शेरसिंह से मंत्री ध्यानसिंह के बध का आज्ञापत्र लेकर मंत्री के पास पहुँचे। उन्होंने उसी ढंग से मंत्री राजा ध्यानसिंह से बात चीत की और मंत्री से भी महाराजा के वध का आज्ञा पत्र लिखवा लिया। महाराजा और मंत्री दोनों इस तरह से एक दूसरे की हत्या के षड़यंत्र में प्रवृत्त हुए, दोनों ही सिंधावालों के हाथ की कठपुतली बन गए।

इस तरह से षड़यंत्र रचकर सिंधावाले अपने उद्देश्य साधन की चेष्टा करनेलगे। थोड़े ही दिन पीछे सिंधावाले पाँच छः सौ सवारों सहित राजधानी लाहौर में पहुँचे। ध्यानसिंह उन दिनों बीमारी का बहाना किए हुए अपने घर बैठे हुए थे। महीने की पहली तिथि थी उस दिन दरबार न था। शेरसिंह कुश्ती देखकर पहलवानों को पारितोषिक दे रहे थे कि इतने में सिंधावाले आ गए। महाराजा शेरसिंह उनसे बहुत अच्छी तरह मिले। अजीत सिंह सिंधावाले ने शेरसिंह के सामने जाकर हँसते-हँसते कहा—"देखिए महाराजा, मैंने चौदह सौ रुपए में कैसी सस्ती और अच्छी-बन्दूक मोल ली है, यदि कोई तीन हजार देगा तो भी मैं इसको नहीं बेचूँगा।" महाराजा ने बन्दूक लेने के लिए हाथ बढ़ाया कि अजीतसिंह ने उनकी छाती पर बन्दूक चला दी। बन्दूक की गोली लगते ही शेरसिंह के प्राण पखेरू उड़

गए। केवल उस समय उनके मुँह से इतना ही निकला कि "यह दगा।"

घातक लोग केवल शेरसिंह का ही वध करके चुप नहीं हुए। उन्होंने शेरसिंह के पुत्र कुँवर प्रतापसिंह को, जो तेरह चौदह वर्ष का था, हत्या की। प्रतापसिंह उस समय अपने इष्टदेव की पूजा में डूबा था। वह बड़े ध्यान से गुरु की वाणियाँ सुन रहा था। लहनासिंह ने उस पर तलवार उठाई। बालक प्रताप ने रोते हुए, हाथ जोड़कर अपने प्राणों की भीख माँगी, पर तंगदिल लहनासिंह में दया कहाँ थी? उसने एक झटके में बेचारे बालक का काम वहीं तमाम कर डाला। शेरसिंह और उसके पुत्र का वध करके ये लोग मंत्री राजा ध्यान सिंह के यहाँ पहुँचे और पूरा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। राजा ध्यानसिंह मन हीं मन पुलकित होकर दुर्ग में पहुँचे और राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था कर ही रहे थे कि सिंधावालों से किसी ने पूछा कि कहिए अब राजा कौन हो? ध्यानसिंह ने कहा— "सिवाय दिलीपसिंह के राजा और कौन हो सकता है? इस पर सिंधावालों ने यह कहते हुए, कि वाह! खूब मेहनत हम करें और दिलीपसिंह राजा और मंत्री आप बनें। उसी समय उन लोगों ने ध्यानसिंह को भी गोली मार दी। बस इस तरह से एक दूसरे के प्रति अविश्वास और संशय के कारण एक ही दिन महाराजा शेरसिंह और ध्यानसिंह एक दूसरे के प्रति षड़यंत्र रचने के कारण मारे गए।

सिंधावाले केवल ध्यानसिंह को मार कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। वे शेरसिंह के पुत्र की भाँति ध्यानसिंह के भाई सुचेत सिंह और उनके पुत्र हीरासिंह के प्राणों के भी ग्राहक बने हुए थे; पर सुचेतसिंह और हीरासिंह घटना स्थल पर नहीं थे, इसी से उनके जीवन की रक्षा हुई। राजा हीरासिंह अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक से अधीर हो गए। पर पीछे उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अपने पिता के घातक से बदला न लूँगा, तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा। हीरासिंह को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में विलम्ब नहीं हुआ; क्योंकि राजा ध्यानसिंह अपनी विचित्र राज शक्ति के कारण, सिक्ख साम्राज्य में सर्वप्रिय हो रहे थे, दूसरे हीरासिंह ने अनेक युक्तियों से अपने पिता की पूर्व सेवाओं का स्मरण कराके खालसा सेना को अपनी ओर कर लिया। दुर्ग पर फिर तोपें दगनी शुरू हुईं। लहनासिंह और अजीतसिंह दोनों मारे गए। हीरासिंह की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। पंजाब केशरी के सिक्ख साम्राज्य में इस तरह से हत्याकांड का एक डरावना सीन समाप्त हुआ। जो खालसा सेना एक समय अपने शत्रुओं के मान मर्दन करने में अपने रक्त की नदी बहाती थी, समय की विचित्र गति के कारण, वह आपस में ही खून की होली खेलने लगी।

ध्यानसिंह के घातक लहनासिंह और अजीतसिंह की हत्या हो चुकी। राजा हीरासिंह का प्रण पूरा हुआ। शहर में मुनादी पिट गई कि विशाल सिक्ख साम्राज्य को अधीन कर महाराजा

रणजीत सिंह के छोटे पुत्र दलीपसिंह और राजा हीरासिंह मंत्री हुए हैं।

राजसिंहासन पर बैठते समय दिलीपसिंह केवल पाँच वर्ष के थे, इसलिए उनकी माता महारानी जिंदा उनकी अभिभाविका नियत हुई। राजा हीरासिंह का सलाहकार पंडित जल्ला नामक एक व्यक्ति था। इसमें सन्देह नहीं कि हीरासिंह बुद्धिमान था, कई भाषाओं का विशेषतः अंग्रेजी का अच्छा पंडित था। कहा जाता है कि दरबार में पंजाब केशरी महाराजा रणजीत सिंह के सामने केवल हीरासिंह को ही बाहरी लोगों में बैठने का सौभाग्य होता था। इसी समय एक भयानक अफवाह यह फैली कि हीरासिंह और जल्ला पंडित रात्रि के समय जबरदस्ती महारानी जिंदा को अपने पास बुलाते हैं। बस फिर क्या था। खालसा सेना राजा रणजीतसिंह और जल्ला पंडित से बिगड़ गई। हीरासिंह ने मंत्रीपद छोड़कर जम्मू को भागना चाहा; परन्तु खालसा सेना ने लाहौर से निकलते ही थोड़ी दुर पर जल्ला और हीरासिंह का वध कर दिया। इस प्रकार सारे राज्य में एक अव्यवस्था फैल गई। हीरासिंह की मृत्यु के बाद जवाहिर सिंह मंत्री नियुक्त हुए। जवाहिर सिंह दिलीपसिंह के मामा थे। किन्तु इसी समय महाराजा रणजीतसिंह के दासी पुत्र पिशोरासिंह और जवाहिरसिंह में अनबन हो गई।

किसी प्रकार जवाहिरसिह के आदमियों ने पिशोरासिंह की हत्या कर दी। पिशोरासिंह की हत्या को खालसा सेना ने

जवाहिरसिंह की हत्या का ही बदला लिया। इस प्रकार एक के बाद एक हत्या कांड होते रहे और सिक्ख साम्राज्य में षड़यंत्र, असन्तोष और अव्यवस्था का बोल वाला होता रहा। सिक्ख साम्राज्य की इस गड़बड़ी से अंग्रेजों ने फायदा उठाना शुरू कर दिया और उनकी तरफ से सिक्खों के मामले में बराबर दखल देना प्रारम्भ हुआ। अंग्रेज चाहते थे कि किसी प्रकार पंजाब का राज्य उनकी मातहती में आ जाये। इसीलिए वे किसी ऐसी बात की तलाश में थे। जिससे सिक्खों को पूरी तरह से अपने कब्जे में रख सकें।

सिक्खों को अंग्रेजों का व्यवहार अच्छा न लगा परिणाम स्वरूप कई युद्ध हुए जिनमें सिक्खों की आपसी फूट व वैमनस्यता के कारण पराजय होती रही।

अन्त में जब भारत के गवर्नर जनरल के पद पर लार्ड-डलहौजी आया तो उसने महारानी जिन्दा को अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करके और राजकुँवर दिलीपसिंह को बागी बनाने के अपराध में महारानी को नजर बन्द कर दिया और दिलीपसिंह को लन्दन भेज दिया।

जिस जगत प्रसिद्ध कोनूर हीरे को महाराजा रणजीतसिंह सदैव अपनी भुजा में धारण करते थे, उसको डलहौजी ने अपनी चल-प्रपंच की नीति से दिलीपसिंह से ले लिया। बाद में यही कोहनूर-हीरा ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया के राजमुकुट की शोभा बढ़ाने लगा।

भारत के पिछले इतिहास और सिक्ख जाति के इतिहास से भी यह पता चलता है कि देश में महान् शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु यहाँ के लोगों के आपसी वैर-भाव और फूट के कारण वे स्थिर नहीं रह पातीं। हमारे देश में समय-समय पर महान् व्यक्तियों का उदय होता रहा और वे देश तथा समाज में नव जीवन की चिनगारी जलाते रहे; परन्तु मत-भेदों की भीषण खाइयों के कारण वह देश के लिए कल्याण का कार्य नहीं कर सके।

हमारे देश का यही दुर्भाग्य रहा है कि महाराजा रणजीत सिंह ने जो विशाल सिक्ख साम्राज्य स्थापित किया था वह एक क्षण में मटियामेट हो गया। रणजीत सिंह के स्थापित किए हुए विशाल साम्राज्य का पतन होने पर भी पंचनद भूमि में अंग्रेजों की विजय पताका फहराने लगी।